महामति प्राणनाथ

सचित्र गाथा



श्री प्राणनाथ मिशन

महामति प्राणनाथ

सचित्र गाथा

विमला मेहता

श्री प्राणनाथ मिशन (रजि०)
डी—193, डिफैन्स कालोनी,
नई दिल्ली—110024
दूरभाष : 616629

वि० सं० 2036
सितम्बर 1979
बुधजी के साके 301

प्रथम संस्करण, 2000 प्रतियाँ

मूल्य : रु० 16/-

आवरण एवं रेखाचित्र : **श्री ब्रह्मदेव शर्मा**

Publisher :
Shri Prannath Mission
D-193, Defence Colony
New Delhi—110024

MAHAMATI PRANNATH—SACHITRA GATHA
: VIMLA MEHTA

Everest Press 4, Chamelian Road, Delhi-110006

प्रकाशकीय

बाल्यकाल के संस्कार और सद्‌साहित्य मनुष्य के चरित्र निर्माण में सहायक बनते हैं। इसीलिए बाल साहित्य के प्रकाशन में सतर्क रहने की आवश्यकता रहती है।

धर्म के बाह्य रूप को देखकर मानव उससे उदासीन हो रहा है। इससे उसे और समाज को भारी हानि उठानी पड़ रही है। उसके नैतिक जीवन को भी ठेस पहुंची है। विज्ञान बाह्य जगत् की संभावनाओं की ओर प्रगतिशील है। धर्म हमारे अन्तर की शक्तियों को विकसित करके विवेकपूर्ण जीवन की दिशा देता है। दोनों का सामञ्जस्य आनन्दमय जीवन के लिए आवश्यक है।

यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि संसार में इतने धर्म हैं--किसे सत्य माना जाय! महामति प्राणनाथ के दृष्टिकोण से देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि सभी धर्म एक ही 'विश्व धर्म' के अंग हैं। एक ही परमात्मा के ज्ञान-सागर की बूंद का विस्तार हैं। धर्म के व्यापक रूप को समझने का दृष्टिकोण देने में यह छोटी-सी सचित्र गाथा सक्षम है—ऐसा मेरा विचार है।

श्रीमती विमला मेहता ने महामति के सम्पूर्ण वाङमय तथा उसके प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रंथों के आधार पर इसका प्रामाणिक आलेख तैयार किया। इसका प्रारूप संवारने में डा० रणजीत कुमार साहा का सक्रिय सहयोग रहा। श्री कश्मीरी लाल भगत ने सत्-साहित्य प्रकाशन को अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया है—इस पुस्तक के प्रणयन में उनकी भी प्रेरणा रही। श्रीब्रह्मदेव शर्मा ने रेखाचित्र एवं आवरण तैयार करने में अथक परिश्रम किया। महाराज मंगलदास जी तथा महाराज जवाहरदास जी ने आर्शीवाद देकर हमारा उत्साह बढ़ाया है।

कागज की मूल्य-वृद्धि का आतंक हमारे प्रयास पर अंकुश लगा देता, परन्तु श्रीमंतों विशेष रूप से—श्री मुरलीधर भंडारी, श्री पुरुषोत्तमदास शाह, श्री सोहनलाल आहूजा, श्री के० के० मेहता आदि की आर्थिक सहायता से यह कार्य सहज सम्पन्न हुआ। हम हृदय से इन सबके प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

इस पुस्तक की योजना 'श्री विजयाभिनंद निष्कलंक बुध' की त्रिशताब्दी के अवसर पर बनी और इसका प्रकाशन अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के उपलक्ष्य में हुआ। आशा है, श्री प्राणनाथ मिशन का यह अनुपम उपहार बालकों के चरित्र निर्माण एवं आध्यात्मिक उत्थान में सहायक बनेगा।

मुल्कराज कटारिया
प्रधान,
श्री प्राणनाथ मिशन

निवेदन

विश्व धर्म की सुन्दर फुलवारी में रूढ़ियों और आडंबरों के कँटीले झाड़-झंखाड़ उग आये हैं। भाषा, वर्ण, वर्ग और जाति भेद की खाइयाँ खोदकर मानव को मानव से अलग कर दिया गया। कर्मकांड और शराअ के बाह्य रूपाडम्बर में धर्म का असली रूप और उद्देश्य—खो गया है। पुष्पों की शोभा और सुगन्धि का इच्छुक मानव उस उपवन में प्रवेश करता है तो वहाँ काँटों की चुभन से कराह उठता है।

यह कैसी विडंबना है कि जन्म लेते ही बालक को धर्म के नाम पर बाँट दिया जाता है। अलगाव के बीज पनपकर घृणा और हिंसा की चिनगारी बनकर फूट पड़ते हैं। इसलिए ऐसे सद्ग्रंथों और संस्कारों की आवश्यकता है, जो आरंभ से ही बालकों को धर्म और संस्कृति के व्यापक स्वर और सर्वांगीण स्वरूप को समझाने का स्वस्थ दृष्टिकोण प्रदान कर सकें।

महामति प्राणनाथ (1618-1694 ई०) का ग्रंथ 'कुलजम स्वरूप' एक विशाल सागर के समान है, जिसमें अन्य सभी धर्मग्रंथों के मूल सिद्धांत और आशय नदियों के समान मिल गए हैं। धर्मों के मूल सिद्धांत, कर्मकांड, शराअ आदि के नियम तथा उनमें निहित मिथक आदि का समन्वयात्मक ढंग से स्पष्टीकरण हुआ है। उन्होंने धर्म का एक शुद्ध और सर्वव्यापी स्वरूप दिखाया, जिसे किसी भी 'धर्म' को मानने वाले ने अपने धर्म का परिष्कृत यथार्थ रूप कहने में संकोच नहीं किया।

महामति के संरक्षण में महाराजा छत्रसाल ने ऐसे सुराज्य अर्थात् धर्म-राज्य की प्रतिष्ठा की थी, जिसमें समस्त प्रजा खुशहाल थी। उस आत्म निर्भर और मर्यादा-सम्पन्न बुंदेला राज्य के सभी लोग अपने सभी भेद-भाव और विवाद को भूलकर एक हो सके थे। सब एक साथ वेद-पुराण और कुरानादि ग्रंथों को मिल-जुल कर पढ़ते थे। बुन्देलखंड में ऐसे राज्य का आदर्श उपस्थित हुआ—जिसके मूल में महामति की प्रेरणा विद्यमान थी और जिसमें प्रवेश दिलाने की पूर्व घोषणा प्रायः सभी अवतारी विभूतियों ने की थी।

इस सचित्र कथा के माध्यम से बालकों को महामति प्राणनाथ का संक्षिप्त परिचय देते हुए यह प्रयास किया गया है कि उनके मन में सत्य धर्म के प्रति जिज्ञासा हो तथा धर्म को व्यापक रूप में देखने-समझने का स्वस्थ दृष्टिकोण मिले। उनमें आस्था जगे। सर्वेश्वर परमात्मा के प्रति प्रेम और श्रद्धा उत्पन्न हो। धर्म के सुरभित पुष्पों से उनका जीवन महक उठे।

इस सचित्र और प्रेरक उपहार को पाकर हमारे नन्हें पाठकों का जीवन धर्ममय बनेगा—इसी आशा और शुभकामना के साथ,

—विमला मेहता

समर्पित

अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष

के

उपलक्ष्य में

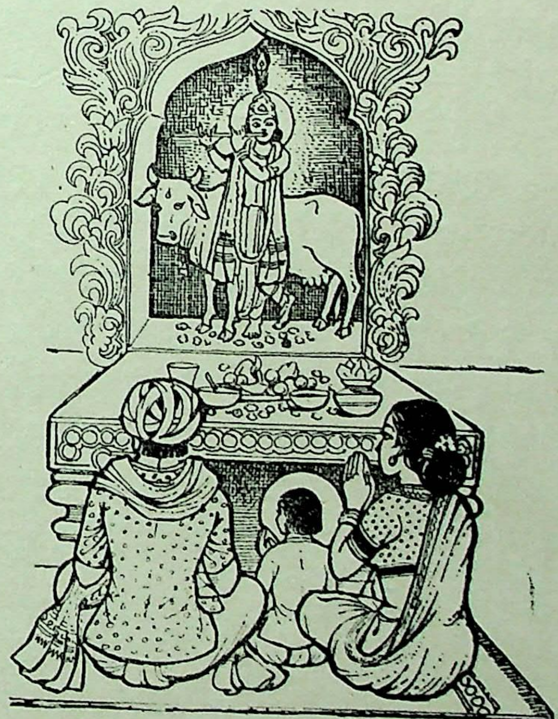
महामति की अभिनव विश्व-चेतना

'जागनी'

को

निजानन्द स्वामी श्री देवचन्द्र जी

उमरकोट मारवाड़* प्रदेश में एक छोटा-सा शहर था। वहाँ एक प्रसिद्ध धनी व्यापारी मतु मेहता रहते थे। उनकी साध्वी पत्नी कुँवरि बाई श्री कृष्ण भक्त महिला थी। मतु मेहता तो व्यापार के लिए भ्रमण करते रहते थे। कुँवरि बाई अपने घर ही में बने मन्दिर में अधिकांश समय पूजा-उपासना में बिताती थीं। दम्पति में परस्पर प्रेम था। वे सम्पन्न और सुखी थे। केवल एक संतान की कमी सदैव खटकती रहती थी। एक दिन पूजा में बैठे कुँवरि बाई को ऐसा लगा, कि जैसे आकाश से उतर कर चन्द्रमा उनकी गोद में समा गया है। यह बात जब पंडितों को विदित हुई तो उन्होंने कहा—कि पुत्र-जन्म का योग है। कुछ काल बाद कुँवरि-बाई ने पुत्र-रत्न को जन्म दिया। जन्म कुंडली के अनुसार उनका नाम देवचन्द्र रखा गया।



श्री देवचन्द्र प्रायः माता-पिता के साथ पूजा में बैठा करते थे। खेल-कूद में उनका मन अधिक न लगता था। बालकों के साथ खेलते हुए वे अवतारी पुरुषों की लीलाओं के नाटक खेलते। खेल-खेल में, पूज्य मूर्तियों को दूध पिलाते तो चेतन के स्पर्श से मूर्तियाँ भी मुंह खोलकर दूध ग्रहण करती। श्मशान भूमि में खेलने निकल जाते। प्रेत भी इनका दर्शन करने सामने आ जाते। एक बार खेल-

* यह भाग अब पाकिस्तान के सिन्ध प्रदेश में है।

खेल में उन्होंने कमंडल से प्रेतों पर जल छिड़क दिया तो वे प्रेत-योनि से मुक्त हो आकाश में उड़ते हुए देवलोक को चले गए। बच्चे बड़े कौतुक से यह सब देखकर अपनी माताओं को बताते तो वे कहतीं—देवचन्द्र अवश्य कोई अवतारी बालक है।[२] किन्तु माँ उनकी वैराग्य वृत्ति से स्वभावत: सशंकित रहतीं। इन बातों को सुनकर वे चिंतित हुईं। बालक के प्रति उनका दुलार बढ़ा और उनकी प्रत्येक इच्छा पूर्ण की जाती।

पांच वर्ष की आयु में ही देवचन्द्र अन्तर्मुखी बालक बन गए।[३] उनके मन में सदैव यही प्रश्न उठते रहते :—मैं कौन हूं ? यह संसार क्या है ? मैं कहां से आया हूं ? इस दुनिया के पार क्या है ? सबको उत्पन्न करने वाला परमेश्वर कहां है ? पुण्य कथा और साधु संग में उनका मन बहुत लगता था। मारवाड़ की मरुभूमि में जल एवं यात्रा की सुविधाओं के अभाव में शायद ही कभी कोई साधु आते। जो आ जाते वे बालक देवचन्द्र के प्रश्नों का उत्तर न दे पाते।

मतु मेहता एक बार व्यापार के सिलसिले में भोजनगर गए।[४] बालक का मन बहलाने के लिए उसे भी संग ले गए। वहां पिता तो बहुमूल्य वस्तुओं के आदान-प्रदान में लगे रहे। यह खोजी बालक मन्दिरों में अपने प्रश्नों का समाधान खोजते रहे। प्रश्नों का उत्तर तो न मिला, परन्तु भोजनगर में इतने साधु देखकर यह बात उनके मन में बैठ गई कि यहां मेरे उद्वेलित मन को शान्ति मिल जायेगी।[५] पिता के साथ श्री देवचन्द्र वापिस लौट आए परन्तु उनका मन वहीं लगा रहा।[६] वे किसी योग्य गुरु को पाने के लिए पुनः भोजनगर जाने को उत्सुक थे। इधर इनको वैराग्यवृत्ति से घबराए माता-पिता की निगरानी और कड़ी हो गई। वे जितना लाड़-प्यार दिखाते, देवचन्द्र उतने ही विरक्त हो रहे थे। अन्त में, मन की तड़प ने उन्हें बेचैन कर दिया। घर में उनका रहना असंभव हो गया। सोलह वर्ष की आयु में ही श्री देवचन्द्रजी ने भोजनगर जाने की ठान ली। उमरकोट और भोजनगर के बीच भयानक मरुभूमि है। एक दो व्यक्तियों की क्या बिसात ! वहां तो काफिले तक खो जाते थे। देवचन्द्र जी किसी काफिले की खोज में लग गए।

उन्हें पता चला कि वजीर के बेटे का खांडा ब्याहने बारात भोजनगर जा रही है। उस युग में प्रथा थी कि किसी कारण दूल्हा न भी जा सके तो उसकी तलवार से भांवरे दिलाकर दुल्हन को ब्याह लाते थे। श्री देवचन्द्र जी ने

वजीर से विनय की, कि वे उसे भी संग ले जाएं। एक तो बालक, दूसरे बिना किसी सवारी के। मुखिया ने साथ ले जाना स्वीकार न किया।

श्री देवचन्द्र कहां रुकने वाले थे। उन्होंने सोचा इनके पीछे-पीछे चला जाऊंगा। घर में आवश्यक सामान बटोरने और चुपके से निकल भागने का अवसर पाने में ही इतना समय निकल गया कि बारात चली गई। 'कोई बात नहीं'—बालक ने सोचा 'घोड़े या ऊंटों के पांवों के निशान देखकर चला जाऊंगा'—और बिना दिशा ज्ञान के श्री देवचन्द्र चल पड़े। पैदल, प्यादे और सवारों का संग कैसा? राह भूल जाना स्वाभाविक था।



श्री देवचन्द्र पवन वेग से चले जा रहे थे। सूरज डूब गया। अंधेरा छा गया। मरुभूमि की तेज आंधी रेत के ढेर यहाँ से उठा कर दूसरी जगह पटक रही थी। मानो रेत के पहाड़ ही उड़ रहे हों। पांव के निशान कहां ठहर पाते! काली अंधेरी रात! उल्लू, चमगादड़ों तथा अन्य वन्य पशु-पक्षियों का भयानक स्वर सुन कर देवचन्द्र का मन बैठा जाता था। उन्हें निश्चय हो गया कि वे मार्ग भूल गए हैं। अपने साथियों से मिलन कैसे होगा? इसकी आशंका तो थी ही—चिन्ता भूख और थकावट के मारे पेट में जोरों का दर्द उठने लगा। तो भी निरंतर वे कदम उठाए भागे चले जा रहे थे।

अचानक एक अनुपम पुरुष दिखाई दिया। सिपाही का सा वेष, हाथ में बरछी, मुख पर दाढ़ी और कमर में पिछौड़ी बँधी थी। उस पर कटार खोंस रखी थी। श्री देवचन्द्र जी ने बड़ों के मुख से सुन रखा था कि इस राह में बहुतेरे डाकू, ठग वगैरह होते हैं। उन्होंने सोचा 'बस अब खैर नहीं। निश्चित है, यह डाकू मेरा सब कुछ छीन लेगा और मुझे मार डालेगा।' आतंक के मारे पेट का शूल इतना बढ़ गया कि एक कदम भी चलना असंभव हो गया।

वह पुरुष पास आ चुका था। उसने आते ही पूछा —

'अहो बालक ! इतनी जल्दी-जल्दी कहां भागे जा रहे हो ? इतने उदास क्यों हो ? हमें बताओ—हम तुम्हारी कुछ सहायता कर दें।'

उसकी मीठी प्रेम भरी बातों से देवचन्द्र आश्वस्त तो क्या होते, उल्टे उनके ठग होने का विश्वास दृढ़ हुआ। परन्तु कुछ कहकर शत्रुता तो मोल ले नहीं सकते थे, इसलिए चुप ही खड़े रहे।

उस व्यक्ति ने देवचन्द्र की गठरी और कटार छुड़ा कर नीचे धर दी। अपनी पिछौड़ी खोलकर बिछा दी और उस पर लेट जाने को कहा। धरती पर टेकने के लिए ज्यों ही उसने बरछी उठाई, श्री देवचन्द्र भय के मारे पीले



पड़ गए। परन्तु उस अपरिचित व्यक्ति ने जाँघों के मूल को अपने पांव से दबा कर उनका दर्द दूर कर दिया। और पूछा—'अब ठीक है न !'

—'थोड़ा और शेष है', सहमे से देवचन्द्र बोले।

सिपाही ने बरछी टेक कर दूसरी जांघ में पांव का बोझ टिका दिया। देवचन्द्र जी की सारी थकान दूर हो गई। वे स्वस्थ प्रसन्न खड़े हो गए।

उस तेजस्वी व्यक्ति ने उनकी गठरी उठा ली। अपनी चमत्कारी पिछौड़ी

उनकी कमर में बांध दी और साथ-साथ चलने का आग्रह किया।

श्री देवचन्द्र अब भी आश्वस्त नहीं हुए। उन्होंने सोचा—इसने मारा-पीटा या धमकाया तो नहीं। शायद दास बना कर रखेगा। परन्तु कुछ कहने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे थे। उस अजनबी ने ही बात का क्रम पकड़ा—'कहाँ जा रहे हो ?'

'भोजनगर'*—अनमने से देवचन्द्र बोले।

पूछने का लाभ ही क्या ! उन्होंने विचारा।

'वहां क्या करोगे ?' सिपाही ने पूछा।

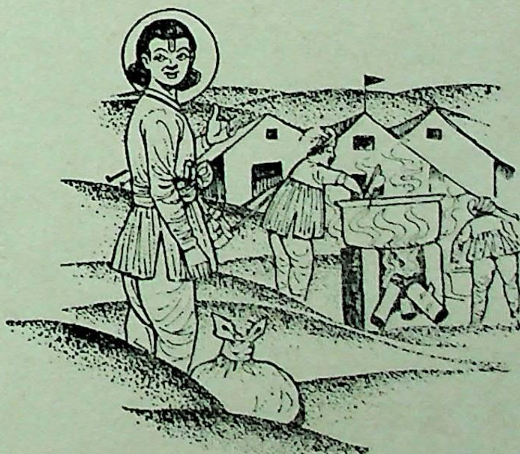
'गुरु की तलाश है।'

'जानते हो, गुरु कौन है ?'

अजनबी के इस प्रश्न ने श्री देवचन्द्र को आश्चर्य में डाल दिया—इस प्रश्न की वे आशा नहीं कर सकते थे। अवाक् हो वे उनका मुँह देखने लगे। उस पुरुष ने फिर कहा—'शास्त्र में छः गुरु बताए गए हैं—मंत्र गुरु, विद्या गुरु, माता, पिता, कुलगुरु और ज्येष्ठ बन्धु। परन्तु सतगुरु इन सबसे अलग होता है, जो इस संसार के जन्म-मरण से छुड़ा कर अखंड सुख प्रदान करता है।'

बात तो मन की ही थी। बड़ी व्यग्रता से देवचन्द्र ने पूछा—'उन्हें कहां खोजूँ ?'—'वेद, शास्त्र और धर्म ग्रंथों का अध्ययन कर उनमें से सार ग्रहण करो, तब वे स्वयं अन्तर में प्रकट होंगे। जिनसे आपका संबंध है, वे क्षण भर भी आपसे अलग नहीं।'

देवचन्द्र आश्वस्त हुए। वह कुछ और कहते इसके पूर्व ही उस तेजस्वी पुरुष ने अपनी पिछौड़ी छुड़ा ली। गठरी वहां रख दी और 'वह देखो तुम्हारे साथी' कहकर अन्तरध्यान हो गया। देवचन्द्र मुंह बाए खड़े रहे। उन्हें लगा, वे सचमुच ठगे गये थे। सामने देखा बारात का पड़ाव था। लोग अभी भोजन पकाने के लिए चूल्हा ही जला रहे थे।



* इसे ही भुज कहते हैं, जो गुजरात के उत्तर भाग में है।

—'यह पुरुष कौन था ?' अब उनको समझ में आया कि जिन्हें मैं ढूँढने निकला हूँ—वे तो मेरे अंग संग, मेरी गठरी उठा कर चल रहे थे। मेरे पाँव दबा रहे थे। ओह ! मैंने उन्हें ठग समझा। पश्चाताप और कृतज्ञता से उनकी आंखों में आंसू आ गए। परमात्मा के अस्तित्व पर, उनके प्रेम पर, उनकी कृपा पर देवचन्द्र का विश्वास दृढ़ हुआ। 'मेरे प्रभु मेरे साथ हैं। उनका संरक्षण मुझे मिलता रहेगा।' इस परम आस्था के साथ वे आगे बढ़े। बारात के लोग भी उन्हें वहां देखकर चकित हुए। 'आखिर यह बालक रेगिस्तान पार कर यहां आया कैसे ?' उनकी आस्था और साहस देखकर मुखिया ने ऊंटवालों को बुलाकर साथ बिठा लेने की आज्ञा दी।

बारात के साथ देवचन्द्र भोजनगर में आ गए। बाराती तो दुल्हिन लेकर विदा हुए। देवचन्द्र अपने काम पर लगे। इतने मन्दिर—असंख्य साधु ! जहां देखो वहां अखाड़े, मठ और पंगत आदि के जंगल में श्री देवचन्द्र खो गए। वे जिस साधु के पास जाते वे नई साधना-पद्धति बताते। जिसने जैसी साधना बताई उसे उन्होंने प्राणपण से किया। उन साधनाओं में कष्ट तो बहुत झेला, परन्तु मन को एकाग्र करने का उपाय न मिला। सतगुरु की खोज में वे भटकते रहे। आडम्बरों, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों में उनका मन नहीं लगा। जहां-जहां कथा होती वे बड़ी तन्मयता से सुनते। जप, तप और ध्यान को माध्यम बना कर स्वार्थी लोग साधारण जनता का शोषण कर रहे थे। वे सबसे यही प्रश्न करते—'मैं कौन हूं, मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है ? परमात्मा को कैसे पाया जाय ? क्या आपने परमात्मा को देखा है ?'



पुजारियों ने कहा—'हम तो पेट के लिए पूजा करते हैं। ब्राह्मणों ने कहा—'यज्ञ, जजमानी तो हमारा पुश्तैनी धंधा है।' साधन, जाप, यज्ञ-यागादि में श्री देवचन्द्र जी का और आगे मन न लगा। अंततः वे स्वामी हरिदास जी के पास पहुंचे।



साधु हरिदास

हरिदास जी से वे पहली बार जब पिता के साथ आए थे, तब भी मिले थे। इनके घर से जाने की सूचना उन्हें मिल चुकी थी। उन्होंने प्रेमपूर्वक देवचन्द्र जी को अपने पास रखा और उनके पिता को इनके मिल जाने की सूचना भिजवा दी। मतु मेहता और कुंवरि बाई अपने लाडले के बिना मृतप्राय हो रहे थे। सब कुछ बटोर कर वे भी सदा के लिए भोजनगर चले आए।

साधु हरिदास नगर के उच्चकोटि के सन्त थे। उनके साथ श्री देवचन्द्र जी राधा माधव की भक्ति में तल्लीन हो गए। ब्राह्म मुहूर्त्त में नहा-धोकर मन्दिर चले जाते। हरिदास जी के जगने तक मन्दिर की परिक्रमा करते, मन्दिर बुहारते, पानी भरते और बड़े प्रेम से सेवा-पूजा करते। इनकी माधुर्य भक्ति से प्रसन्न होकर हरिदासजी ने उन्हें दीक्षा देने का विचार किया।



राधावल्लभी सम्प्रदाय में गुरु दीक्षा के दिन भद्र भेष होना (सिर मुंडाना) आवश्यक होता है। उधर माता-पिता ने इनके विरक्त मन को सांसारिक बंधनों में बाँधने के लिए चुपके से इनके वियाह का आयोजन कर दिया। संयोग से दोनों

के लिए एक ही दिन का मुहूर्त्त निकला। प्रातः ही श्री देवचन्द्र जी को सिर घुटाकर आते देख माता-पिता कुपित हुए। 'आज तो दुल्हा बनने, सजने संवरने का दिन है—यह तुमने क्या किया ?'

अपने विवाह की बात सुनकर श्री देवचन्द्र हँसे—'मेरा विवाह तो माधव से हो चुका है तात ! अब किससे विवाह करेंगे ?' तो भी माता-पिता का मन रखने के लिए जैसे-तैसे विवाह हो गया। उनकी पत्नी साध्वी लील बाई इनके प्रभु प्रेम की राह में बाधक न बनी। वे प्रतिक्षण इनके सेवा कार्यों में सहयोग देने के लिए तत्पर रहतीं।

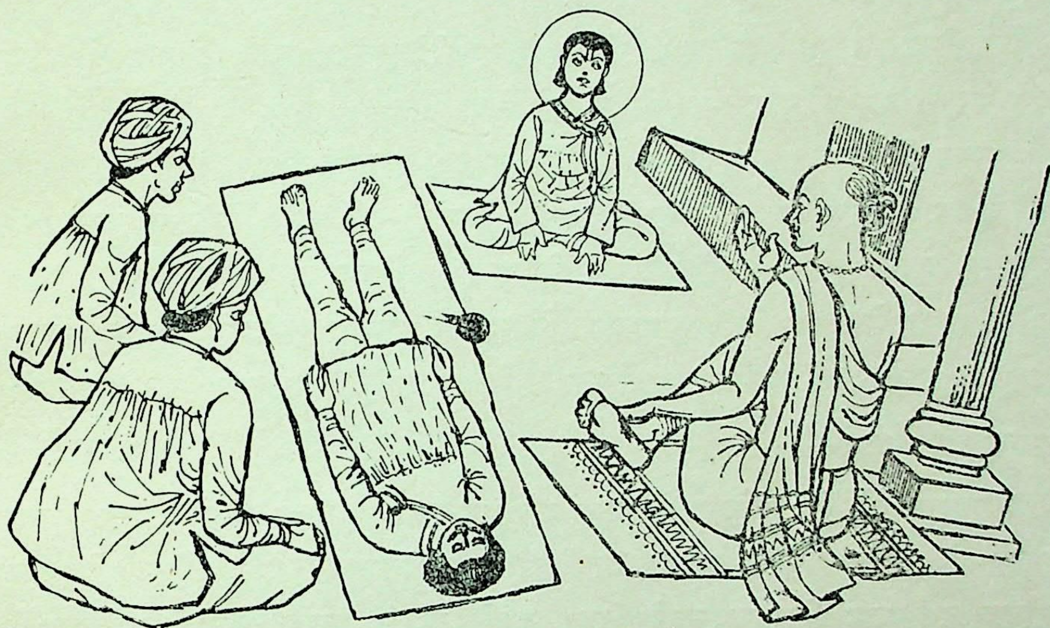
हरिदास जी देवचन्द्र जी को मंत्र देने बैठे तो उन्होंने पूछा—'और किस-किस से मंत्र ले चुके हैं ?' श्री देवचन्द्र जी ने किसी अज्ञात संन्यासी का मंत्र लेने की बात कही। हरिदास जो ने मंत्र लौटाने की विधि बताई—'यह मंत्र लिख कर रोटी में पकाकर किसी संन्यासो को लौटा दो।' देवचन्द्र जी को यह बात अटपटी लगी। उन्होंने कहा—'यदि आपका मंत्र शक्तिशाली है तो दूसरे मंत्र स्वयं ही दब जाएंगे। उन्हें निष्फल करने का यह उपाय आवश्यक नहीं।'

जिस प्रकार सूर्य के निकलने पर चाँद सितारे छिप जाते हैं, उसी प्रकार परमेश्वर का स्वरूप मन में स्थित हो जाय तो अन्य देवताओं की शक्तियां भी अधीन हो जाती हैं। अपने पट्ट शिष्य के मुख से युक्तिपूर्ण बात सुनकर हरिदास जी चकित हुए। उन्होंने 'वृन्दावन बिहारी' श्री कृष्ण का मंत्र दिया और जाप करने की विधि बताई।

श्री देवचन्द्र जी हरिदास जी के पास निरंतर जाते रहे। एक दिन उन्होंने देखा कि कुछ लोग मृतक समान एक व्यक्ति की चारपाई कंधों पर उठा कर रोते हुए हरिदास जी के पास लाए। उस व्यक्ति को बिच्छू ने काट लिया था। हरिदास जी ने मंत्र पढ़ कर मूँछों पर हाथ फेरा। वह तत्काल स्वस्थ हो गया। श्री देवचन्द्र पर स्वामी हरिदास जी बड़े प्रसन्न थे। अवसर देखकर उन्होंने बिच्छू का विष उतारने का वह मंत्र भी उन्हें देने की बात कही। देवचन्द्र जी ने कहा—'आपने पहले जो मंत्र मुझे दिया है, वह असंख्य बिच्छुओं की दंश-पीड़ा के समान जन्म-मरण के संताप से मुक्त करने वाला है। उसे पाने के बाद अब अन्यान्य सिद्धियों को प्राप्त करने की मेरी इच्छा नहीं है।'

संसार के लोग सिद्धियों के लिए कितने व्यग्र होते हैं। आत्मज्ञान की

चाह रखने वाले उनसे दूर रहते हैं। श्री देवचन्द्र जी ने बड़े तत्त्व की बात कही थी।



हरिदास जी देवचन्द्र जी की अनन्य निःस्वार्थ भक्ति पर मुग्ध हुए। उन्हें लग रहा था कि देवचन्द्र जी साधारण व्यक्ति नहीं हैं। उनके मन में देवचन्द्र के प्रति अपार स्नेह उमड़ने लगा।

मंत्र मिला, विवाह भी हुआ। साधना की कई सरणियां पार हुईं तो भी श्री देवचन्द्र जी की प्रेम सेवा बढ़ती चली गई। हरिदास जी ने प्रेम में भरकर एक दिन कहा कि हम आपके निवास पर ही बाल मुकुन्द की मूर्त्ति प्रतिष्ठित करा देते। हैं आपका नित्य प्रति कष्ट झेलना हमें खलने लगा है।

नियत समय पर बाल मुकुन्द जी ने हरिदास जी को दर्शन देकर बताया – 'आप श्री देवचन्द्र की शक्ति को पहचानते नहीं। हम देवता लोग उनसे सेवा पाने के अधिकारी नहीं। फिर भी, यदि वे खिन्न हों तो उन्हें बांके बिहारी (रास के स्वरूप श्री कृष्ण) के वस्त्र सेवा के लिए दे दीजिए।' दर्शन की इस घटना के पीछे श्री देवचन्द्र की ही महानता है, ऐसा मानकर हरिदास जी देवचन्द्र जी से मिलने चले। राह में ही उनके पांव पकड़ लिए। श्री देवचन्द्र जी अचंभे

में पड़ गए—'आप क्या करते हैं स्वामी जी !' 'बालमुकुन्द ने हमें आपका परिचय दिया। आपके कारण ही हम उनके दर्शन कर पाए। आप सचमुच महान हैं'—हरिदास जी ने स्पष्ट किया।

हरिदास जी की आज्ञा शिरोधार्य कर श्रीदेवचन्द्र—बांके बिहारी के वस्त्र घर पर ले गए और तन-मन से उनकी सेवा में लीन हुए।

एक दिन ध्यानावस्था में उन्होंने ग्वाल बालों के बीच प्रीतिभोज करते श्री कृष्ण के संग बैठ कर घुघरी खाई। उन्हें श्री कृष्ण के बाल-स्वरूप का साक्षात् दर्शन हुआ। तो भी श्री देवचन्द्र का मन संतुष्ट न हुआ। कुछ और पाना शेष था। बाल्यकाल में मन में उठने वाले प्रश्नों का उत्तर अब भी उन्हें न मिला था। भोजनगर से हटकर वे जामनगर चले आए।[९]

कान्ह जी भट्ट—

श्याम जी के मन्दिर में कान्ह जी भट्ट नामक एक विद्वान भक्त विष्णु श्याम के मन्दिर में श्रीमद्भागवत की कथा सुनाया करते थे।[१०] श्री देवचन्द्र चौदह वर्ष तक निरंतर उनसे कथा सुनते रहे। उनके प्रेम और विवेक से प्रभावित होकर भट्ट जी उनके आने पर ही कथा प्रारम्भ करते। उनके कुछ धनी भक्तों को यह पक्षपातपूर्ण जान पड़ा। पूछने पर भट्ट जी ने बताया—'आप छः माह पहले सुनी कथा श्री देवचन्द्र जी से ज्यों की त्यों सुन सकते हैं, परन्तु आप सब कल की बात भूल जाते हो। मुझे तो आप लोगों से कुछ प्राप्त भी होता है—वह गरीब भला क्या देगा ? वे मात्र ध्यान से सुनते हैं—ऐसे श्रोता को कथा सुनाकर मैं धन्य हो जाता हूं।'

धनी मानी लोग क्या उत्तर देते ! परन्तु उन्होंने श्री देवचन्द्र जी में दोष ढूँढना शुरू किया। वे कुछ न कुछ कहकर भट्ट जी के मन से उनका स्नेह कम करने का प्रयास करते। मंदिर में एकादशी के दिन व्रत होता था। द्वादश (बारस) के दिन उत्सव होने के कारण कथा नहीं होती थी। एकादशी को कथा सुनकर देवचन्द्र भोजन कर लेते। बारस के दिन उनका उपवास रहता। कर्मकांड को महत्त्व देने वाले लोगों ने शिकायत की तो भट्ट जी ने कहा—'मैं नहीं समझता श्री देवचन्द्र ऐसा करते होंगे—यदि करते भी होंगे तो उसमें अवश्य कोई तत्त्व की बात होगी।' पूछने पर देवचन्द्र जी ने बताया कि मैं

आत्मा को प्रभु के यशोगान का आहार देकर ही शरीर को भोजन देता हूं। बारस के दिन आप कथा नहीं सुनाते तो मैं उपवास करता हूं। ईर्ष्या करनेवालों को बात अटपटी तो लगी, परन्तु इस विवेकपूर्ण तर्क का उनके पास कोई उत्तर न था।

शरीर भोजन से, मन चिन्तन से, बुद्धि ज्ञान से और आत्मा प्रभु साक्षात्कार और उनकी यशोगाथा से तृप्त होती है। आत्मा की तृप्ति मानव को आनन्द और शान्ति प्रदान करती है। हम आत्मा को आहार दिए बिना मन और शरीर को संतुष्ट करने का प्रयास करते हैं, परन्तु असफल होते हैं।

श्री देवचन्द्र जी ने प्रत्येक प्रचलित परम्परा और रूढ़ि को अंधविश्वास से नहीं—तर्क और विवेक की कसौटी पर परख कर जीवन में उतारने का आग्रह किया। व्यर्थ चल पड़ी रूढ़ियों को परम्परा या धर्म का नियम मान कर बिना सोचे-समझे निबाहते जाना अज्ञान है।

यह संसार संघर्ष भूमि है। छोटी-से-छोटी उपलब्धि साधना और संघर्ष की अपेक्षा रखती है। श्री देवचन्द्र जी को भी परम साध्य को प्राप्त करने से पूर्व कसौटी पर चढ़ना पड़ा। उन्हें तीव्र ज्वर हो आया। सन्निपात होने पर भी कथा सुनना निरंतर चलता रहा। तनिक असावधानी के कारण ज्वर बढ़ जाने का भय था। वैद्यजी को घर पर बुलाया गया। वैद्यजी ने दवा दे कर पूरी सावधानी बरतने की सलाह दी :—'हवा तक न लगने पाए अन्यथा बात हाथ से निकल सकती है।' 'परन्तु यह तो अभी कथा सुनने जायेंगे'—माँ ने काँप कर कहा।

वैद्यजी ने दवा वापिस उठा ली 'तो मेरी दवा वापस कर दीजिए। परहेज़ न करने वाले को दवा देकर मैं व्यर्थ में बदनामी कराना नहीं चाहता।'

परन्तु पिता ने कहा—'यह कैसे जाएंगे ? मैं इन्हें अवश्य रोक लूंगा। देह है तो धर्म है।'

देवचन्द्र अर्द्धमूर्च्छित अवस्था में ही बोले—'धर्म के लिए ही तो देह है।'—वैद्य जी चले गए। माँ ने दवा उबाल कर काढ़ा पिलाया। पसीना आ रहा था। कथा का समय हुआ। देवचन्द्र जी उठ खड़े हुए। सिर लपेटा, रुग्ण शरीर को सहारा देने के लिए लाठी हाथ में ली और चल पड़े। पिता ने बाहर से द्वार

बंद किया । देवचन्द्र जी खड़े न रह सके—मूर्च्छित होकर गिर पड़े । मुंह पीला, ओंठ नीले पड़ गए, आँखें चढ़ गईं । लगा, प्राण पखेरू उड़ गए । मां चिल्लाई— 'खमा, खमा' । पिता ने किवाड़ खोलकर कान में पुकारा—'चलो देवचन्द्र हम पहुंचा देते हैं ।' चुपचाप देवचन्द्र जी उठ कर संग चल दिए ।

कथा के बाद मतु मेहता ने सारा वृत्तांत सुनाते हुए कहा—'आज तो अन्त ही हो गया था ।'

"भट्ट जी ने कहा हमें तो कुछ पता ही नहीं दिया । अस्वस्थ थे तो हमें कहा होता । हम घर पर ही आकर कथा सुना जाते ।' धर्म सुविधा की बात नहीं, साधना है—जिसमें तप कर कुंदन हुआ जाता है । श्री देवचन्द्र जी के आचरण से यह बात स्पष्ट हुई ।

प्रभु दर्शन—

निष्ठा, आस्था और पात्रता को परख कर श्री कृष्ण परमात्मा उनके सम्मुख प्रकट हुए तो सब सन्ताप मिट गए । बाल्यकाल से मन में उपजते प्रश्नों का समाधान स्वयं श्री कृष्ण परमात्मा ने ही किया । 'मुझे पहचाना ? स्वयं को जानते हो ? तुम जाग रहे हो या नींद में हो ? इस संसार में तुम



क्यों आए हो ? तुम्हारा असल वतन कहां है ?' श्री कृष्ण ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी तो श्री देवचन्द्र मुस्कराए—'यही तो मेरे मन के प्रश्न हैं और इन्हें आप स्वयं पूछ रहे हैं—तो सुनिए। जितना हम जानते हैं, उतना बताए देते हैं—शेष समाधान आप कीजिए।'

'आपके प्रति मैं अचेतन में जाग्रत हूं, इसलिए मुझे तो इतना ही पता है कि आप मेरे प्रियतम हैं। उलझनों और आडम्बरों से भरे इस विश्व नाट्य को देख कर मैं उलझ रहा हूं। इस खेल में कई प्रकार के खेल हो रहे हैं। यहां कुछ भी स्थिर और स्थायी नहीं। झूठ की अनेक पर्तों के अन्दर सत्य है नहीं, यदि हो भी तो उसे खोज पाना असंभव है। इस नश्वर ब्रह्मांड को थाह पाना कठिन है, तो इसके पार के पार अखंड वतन की सुधि कौन दे सकता है ?'

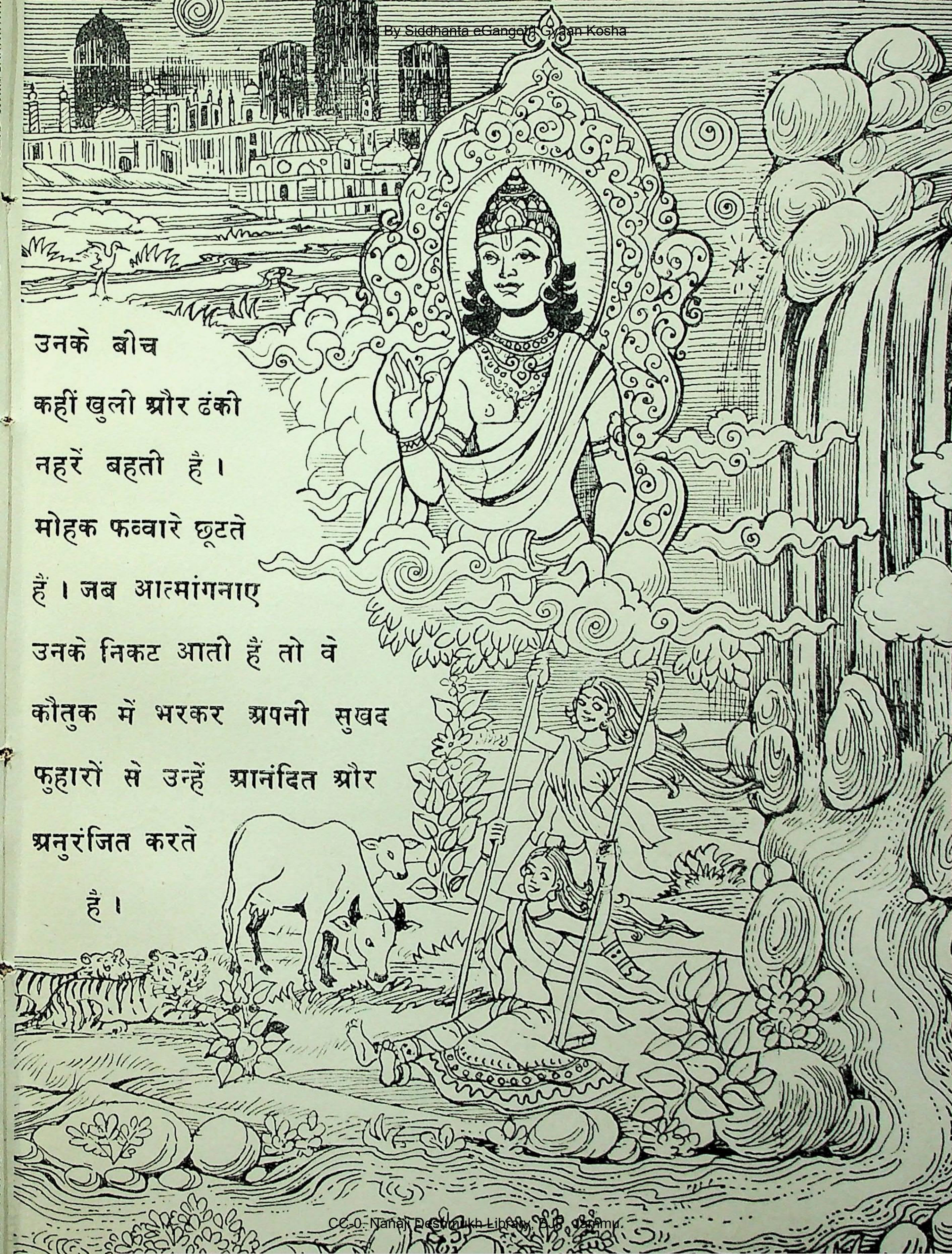
श्री देवचन्द्र जी अपने पूर्व संचित ज्ञान के भार से निर्भार हो चुके तो प्रियतम श्री कृष्ण ने उन्हें तारत्तम मंत्र दिया। 'तारत्ताम' संस्कृत शब्द है—जो तर और तम का बोधक है। जो दिखाई देता है--उससे उच्चतर और उच्चतम सत्ता है। उसको पहचानने की निर्णायक बुद्धि और उनमें समन्वय देखने का ज्ञान श्री देवचन्द्र जी को मिला। ऐसा ही ज्ञान मोह और अंधकार से निकाल कर चेतन प्रकाश में प्रवेश दिलाता है।

श्री कृष्ण ने कहा—'अक्षरातीत श्री कृष्ण मेरा नित्य नाम है। इस नश्वर ब्रह्मांड के पीछे अविनाशी सत्ता के भी पार परमधाम मेरी सत्ता है। तुम मेरी अर्द्धांगिनी, आनन्द अंग 'श्यामा' हो। इस संसार में तुम्हारी संगी आत्माएं भ्रम जाल में उलझ गई हैं। उन्हें बोध देकर जगाओ। उन्हें परमधाम की स्मृति, सुरति और सुमति प्रदान करने का कार्य तुम्हें सौंपा जा रहा है।'

इतना कह कर प्रियतम मन मन्दिर में विराजे तो सारो दाह और शोक-क्षोभ मिट गया। दिव्य प्रकाश से तन-मन प्रकाशित हो उठा। परमानन्द का स्रोत उमगा तो संभाल पाना कठिन हो गया। 'यह राज़ किस पर खोलूं' ? मन में यह उत्कंठा जगी। प्रश्नों के उत्तर स्वयं ही खुलने लगे। आत्मानंद का प्रकाश पाकर श्री देवचन्द्र 'निजानंद स्वामी' हुए।

गांग जी भाई उनके साथ बड़ी तन्मयता से कथा सुनते थे। श्री देवचन्द्र जी ने सबसे पहले उन्हीं के घर में चर्चा करना आरम्भ किया।

परमधाम वृत्ताकार
चिन्मय भूमिका है। वह
परमात्मा के सच्चिदानन्द गुणों से परिपूर्ण
है। वहाँ वन-उपवन, विहार-स्थल, भव्य प्राँगण,
प्राकार और दालान तथा शिखरचुम्बी हवेलियाँ
है। उनपर धरे मणिमय सिंहासन, चौकियाँ
तथा कुर्सियाँ सभी ऐश्वर्यों
और साज-सज्जा से पूर्ण हैं।
वहाँ सुन्दर तथा सुगन्धित पुष्पों
से शोभायमान उपवन
हैं।



उनके बीच
कहीं खुली और ढंकी
नहरें बहती हैं।
मोहक फव्वारे छूटते
हैं। जब आत्मांगनाएं
उनके निकट आती हैं तो वे
कौतुक में भरकर अपनी सुखद
फुहारों से उन्हें आनंदित और
अनुरंजित करते
हैं।

प्रभु चर्चा का ऐसा दौर चला कि कुछ ही दिनों में सैंकड़ों की संख्या में नर-नारी आकर ज्ञान और भक्ति की मंदाकिनी में डूबने उतरने लगे ।

श्री देवचन्द्र जी की कथा में सभी धर्म-ग्रंथों का सार रहता । संतों की वाणी को वहां गाया-दोहराया जाता । परमात्मा, सत्य चेतन आनंद से पूर्ण ज्योति स्वरूप हैं तो यह संसार असत्य, जड़ और दुखमय क्योंकर हो गया ? जड़ विश्व कहाँ से आया ? इन प्रश्नों का समाधान वे अपनी मधुर वाणो में करते ।

सृष्टि-रचना का कारण[11]—

जब यह स्थूल नाशवान संसार, क्षर ब्रह्मांड नहीं था । इसकी रचना करने वाले कूटस्थ अक्षर ब्रह्म की काल-माया, मूल प्रकृति का स्फुरण नहीं हुआ था, तब भी आत्माएँ किशोर रूप में अक्षरातीत सच्चिदानंद पूर्णब्रह्म परमात्मा श्री कृष्ण के तेज से प्रकट परमधाम में उनकी आनन्द-लीला में मग्न थीं । परमधाम वृत्ताकार चिन्मय भूमिका है ।[12] वह परमात्मा के सत्-चित-आनंद गुणों से परिपूर्ण है । वहां कई प्रकार के तेजोमय विशाल महल, मंदिर वन, उपवन, विश्राम स्थल, प्रांगण, दालान और आसमान को छूने वाली हवेलियां है । वहां के चबूतरों पर बिछे सुन्दर नरम गलीचे तथा गदेले हैं । उन पर धरे सिंहासन, कुर्सियां, चौकियां आदि सभी ऐश्वर्यों और साज-सज्जा से पूर्ण हैं । सुन्दर सुगन्धियुक्त पुष्पों से उपवन शोभायमान हैं । उनके बीच कहीं खुली, कहीं ढँकी नहरें बहती हैं । चेतन फव्वारे हैं । जब आत्माएँ उनके निकट आती हैं तो वे कौतुक में भरकर अपनी फुहार से उन्हें आनंदित और अनुरंजित करते हैं ।

वृक्षों में रत्नों के समान मेवे और फूल लटक रहे हैं । वृक्ष एक रस, चंदोवा और छतरी के समान शीतल छाया प्रदान करने वाले हैं । ऊंचे पहाड़ हैं । वृक्षों पर लटकते झूलों में झूलती आत्माएँ प्रियतम को रिझाने वाले गीत गाती हैं । कोकिला, मोर, पपीहा आदि उनके स्वर में सुर पुराते हैं । बंदर नगाड़े आदि बजाकर संगत करते हैं । पहाड़ों से मधुर गुंजार के साथ झरने झरते हैं और दशों दिशाओं को गुंजा देने वाले जल प्रपात भी । उनका जल नहरों के द्वारा महान सागरों में समा जाता है । पोखराज पहाड़ से सोलह जल

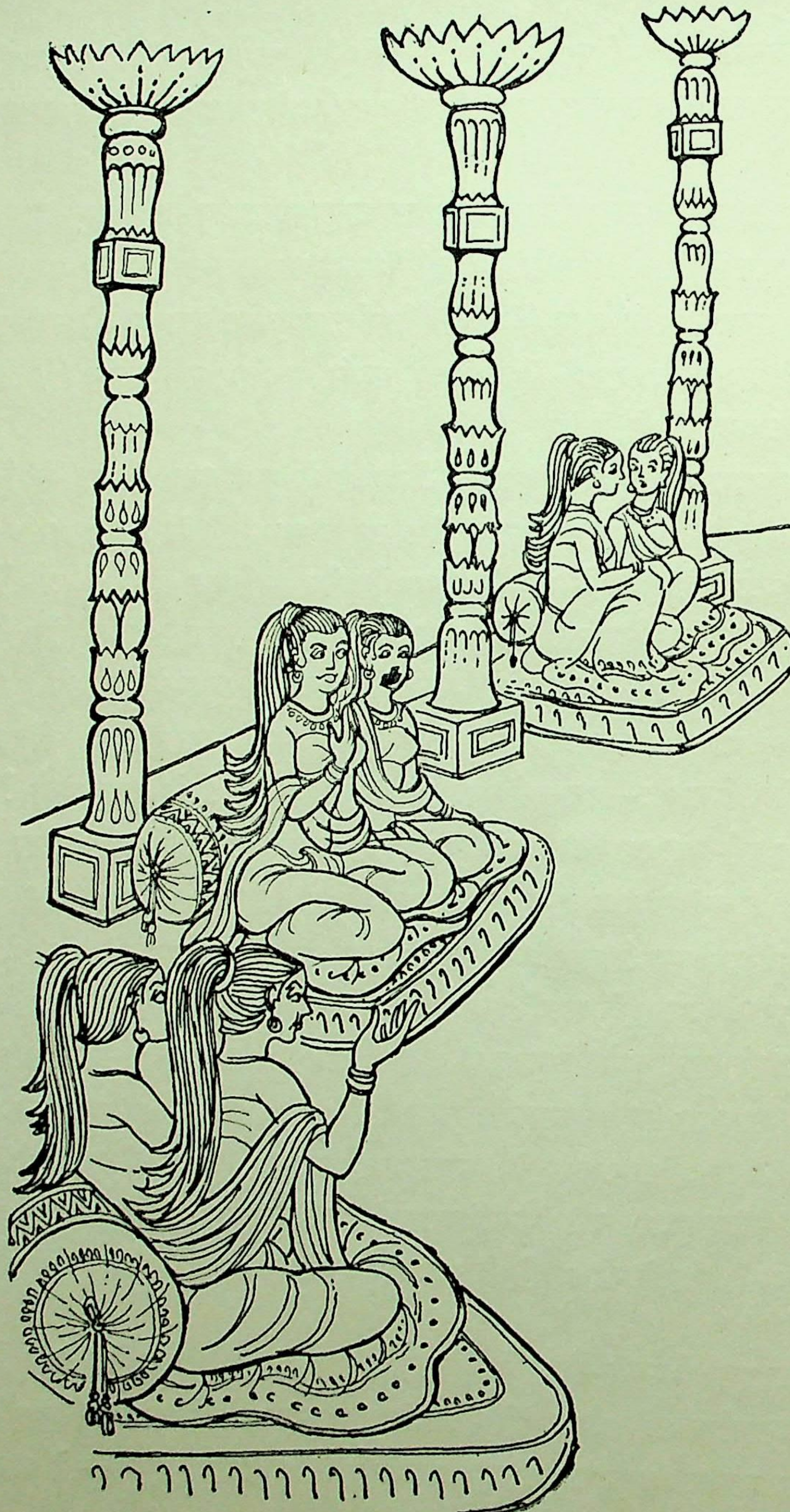
प्रपातों का जल यमुना नदी में बहता है। पुलों, घाटों तथा फलों के उपवनों से होती यमुना हौज कौसर ताल में गिरती है। यमुना नदी के एक ओर अक्षरातीत परमात्मा का रंग महल है तो दूसरी ओर उनके सत् अंग अक्षर ब्रह्म का धाम है।

अक्षर ब्रह्म नित्य प्रति अक्षरातीत ब्रह्म के दर्शन के लिए आते हैं। वे उनकी प्रेरणा से ही बालक के घरौंदों के समान अनन्त विश्व बना कर मिटा देते हैं।[13] परमात्मा ने ज्ञान विज्ञान की नीरस सृष्टि रचना में मग्न अक्षर ब्रह्म के मन को प्रेम के आनन्द से प्लावित करने के लिए रंग महल की प्रेम लीला देखने की इच्छा उनमें जाग्रत की।

परम धाम की आत्माएँ अपने प्रियतम के पूर्णानन्द लीला के विस्तार में रमण करती थीं।[14] नश्वर संसार और उनके सम्बन्धों से वे बेखबर थीं। अपने प्रियतम के प्रेम में पगी वे उनकी सामर्थ्य और महिमा से अनभिज्ञ थीं। दुःख क्या है ? बिछड़ना-मिलना, छोटा-बड़ा, स्वामी-सेवक आदि द्वैत के अनुभव उन्हें न हुए थे। एक परमात्मा के सिवा उन्होंने कुछ देखा नहीं था। उनकी लीला, उनके धाम, उनके स्वरूप में एक होकर उन्होंने 'स्वलीला द्वैत' का अनुभव तो किया था—पर दुई या द्वैत भाव क्या है ? वे क्या जानें ?

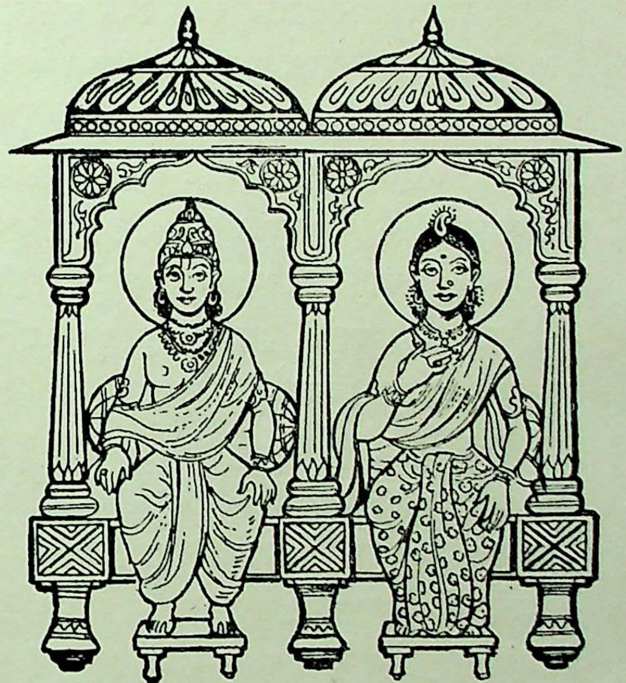
यह अपूर्व अनुभव दिलाकर[15] रुहों के आनन्द में नवीनता लाना आवश्यक था। इसके लिए सामर्थ्यवान परमात्मा ने अपने सत्य अंग अक्षर ब्रह्म की मायावी सृष्टि—यह तिलस्मी दुनिया देखने की इच्छा रुहों के मन में अंकुरित की। जिस प्रकार दैनिक जीवन में व्यस्त रहते हुए भी नाटक सिनेमा आदि खेल देखने की चाह हमें आनन्द देती है। उसके लिए हम उल्लसित हो उठते हैं, उसी प्रकार इस सुख दुखपूर्ण संसार देखने का विचार लेकर ब्रह्मात्माएँ मिल कर अपने प्रियतम परमात्मा के पास आईं। परम धाम की जिस भूमिका में उनमें परिसंवाद हुआ उसे 'मूलमिलावा' या खिलवत खाना कहा जाता है। चौसठ स्तम्भों वाली गोल हवेली का यह मनोरम विश्राम स्थल बड़ा ही अपूर्व है।

आग्रह पूर्ण व्यक्त की गई इच्छा को सुनकर प्रियतम ने इस दुनिया की मायावी आकर्षक शक्ति का परिचय देते हुए हुए उन्हें सावधान किया[16]—संसार में तुम इस प्रकार इकट्ठा न रह पाओगी। परस्पर एक दूसरे का तो क्या



तुम्हें अपने ही मूल स्वरूप का स्मरण न रहेगा । वहाँ तुम मुझे भी भूल जाओगी । संसार ही तुम्हें सत्य प्रतीत होगा । परम धाम की याद दिलाने पर तुम्हें यह सत्य, कल्पना की भाँति प्रतीत होगा । एक दूसरी से अलग होकर भटकने के सिवा कुछ हाथ न आएगा । यह दुःख भरा संसार तुम्हारे देखने योग्य नहीं ।'

प्रियतम ने उन्हें जितना मना किया, खेल देखने की चाह उतनी ही बढ़ती गई ।[१७] परन्तु बिछुड़ने के भय ने उन्हें एक दूसरे के इतना निकट ला दिया कि वे अनार के दानों की तरह सिमट गई । उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि अद्वैत—एकदिली या वाहेदत का सागर उमड़ पड़ा हो ।



उनकी इस अनोखी एकरूपता को देखकर प्रियतम ने परिहास करते हुए कहा—'तुम किस प्रवंचना में जा रही हो इसका तुम्हें पता नहीं । नहीं तो इतना आग्रह न करतीं ।'

'आत्माओं को अपने प्रेम और बल पर अतिशय विश्वास था ! उन्होंने कहा[१८]—'यह दुनिया हमारा क्या बिगाड़ लेगी ? आप एक नहीं, सौ बार आजमा कर देख लें । जो ब्रह्मात्मा है, वह एक क्षण भी आपको भूल नहीं सकती ।'

वास्तव में परमधाम में केवल सत्य ही था—असत्य, नकल और मिथ्या कुछ नहीं । आनंद ही आनंद था, दुःख का लवलेश भी नहीं । वहाँ मिलन का आनंद तो विद्यमान था, वियोग का अनुभव नहीं । इसलिए इनका ब्योरा उन्हें कैसे मिलता । बड़ी रेखा का बड़प्पन दिखाने के लिए ही छोटी रेखा खींची जाती है । नकल को देखे बिना असल की प्रतीति नहीं होती । दुःख का आभास न मिले तो आनंद का अनुभव हुआ—यह कैसे ज्ञात हो ? चेतन अविनाशी ब्रह्मधाम के

समानान्तर नींद में स्वप्न की तरह ही स्थूल जगत् की सृष्टि हुई। ब्रह्मात्माओं को अपने बड़प्पन का बोध और आनंद दिलाना ही सृष्टि रचना का कारण बना।

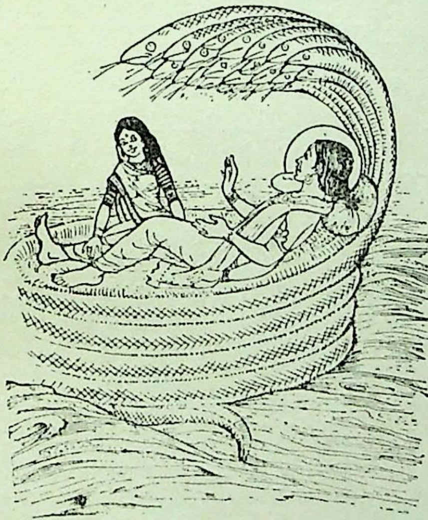
जब आत्माओं ने सुना—कोई ऐसी भी दुनिया है, जहां असत्य है, मृत्यु है, जड़ता है, दुःख है तो वे उसे देखने का लोभ संवरण न कर पाईं।[१९] फिर यह संसार उनके प्रेम को परखने की एक कसौटी और चुनौती भी तो थी, जिसे वे अस्वीकार न कर सकीं। विनोदी प्रियतम ने जितना उन्हें रोका उतनी जिज्ञासा उनमें बढ़ती ही गई।

ब्रह्मांगनाओं के ध्यान को नश्वर संसार की ओर लगाने के लिए प्रियतम ने अपनी माया का आवरण डाला। माया के दो मुख्य विक्षेप हैं। एक से—जो है वह छिप जाता है और दूसरी से—जो नहीं है उसके होने का भ्रम होने लगता है। अपनी ही माया की ओट होने के कारण परमात्मा दिखाई नहीं देते।[२०] शुद्ध साकार चेतन ब्रह्म, निराकार और शून्य प्रतीत हुआ - सत्य असत् भासने लगा। परमात्मा के स्वरूप में मग्न होने का आनंद वियोग तथा अलगाव के दुःख में परिवर्तित हुआ। इस तरह पूर्ण सच्चिदानन्द के अभाव के भ्रम से यह स्वप्नवत् ब्रह्मांड दिखाई देने लगा। ज्ञान की यही भूमिका बनी। क्या ? क्यों ? कहां ? आदि प्रश्न यहीं से उठने लगे। पू परमधामर्ण में यह सब सम्भव नहीं था। इसके लिए अभाव और शून्य का बोध आवश्यक लगा। सृष्टि रचना का आधार यही 'शून्य' बना। ब्रह्मात्माओं की तरह अक्षर ब्रह्म भी उस माया की लपेट में आए।[२१] हम जैसे नींद में सुपना देखते हैं तो जाग्रतावस्था में देखी सभी वस्तुएं स्वप्न में साकार हो जाती हैं। परन्तु उनका अस्तित्व नींद और स्वप्नावस्था तक ही रहता है। फिर वे मन में विलीन हो जाती है।[२२] अक्षर ब्रह्म के मन से सुमंगला शक्ति ने प्रकट होकर मोह तत्त्व का विस्तार किया।[२३] जल के समान फैले इस मोह सागर में अक्षर ब्रह्म की मूल प्रकृति से तीन गुण—सत्, रज और तम और पांच तत्व—आकाश, अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी अलग-अलग-से तैरते दृष्टिगोचर हुए। सृष्टि रचना की भावना से प्रेरित इच्छाशक्ति ने इन्हें समेटा तो वे सब अंडरूप में चक्कर काटने लगे। सृष्टि का बीज धारण करने के कारण उस अण्ड को 'हिरण्यगर्भ' कहा गया।

अक्षर ब्रह्म की 'सुरत' के प्रवेश से जब वह अंड फूटा तो एक विशाल कमल पत्र पर तैरता हुआ बालक प्रकट हुआ। जल में वास होने के कारण इन्हें 'नारायण' कहा गया। स्वप्न में जिस प्रकार कर्त्ता के रूप में अपना ही स्वरूप खड़ा होता है, उसी प्रकार नारायण अक्षर ब्रह्म की सुरत-



स्वरूप इस जगत् के ईश्वर हैं। मैं कौन हूँ? कहाँ से प्रकट हुआ? मैं एक अकेला हूं—अनेक हो जाऊँ, आदि भाव मन में उठे। शेषनाग ने अपने शरीर से उनके लिए शय्या बनाई। उनके अंग से लक्ष्मी प्रकट हुई। नाभि से कमल निकला। उस पर त्रिदेवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रकट हुए। इन तीनों के द्वारा क्रम से तीन गुण और पांच तत्त्वों की सहायता से सृष्टि की उत्पत्ति पालन और संहार होता है।



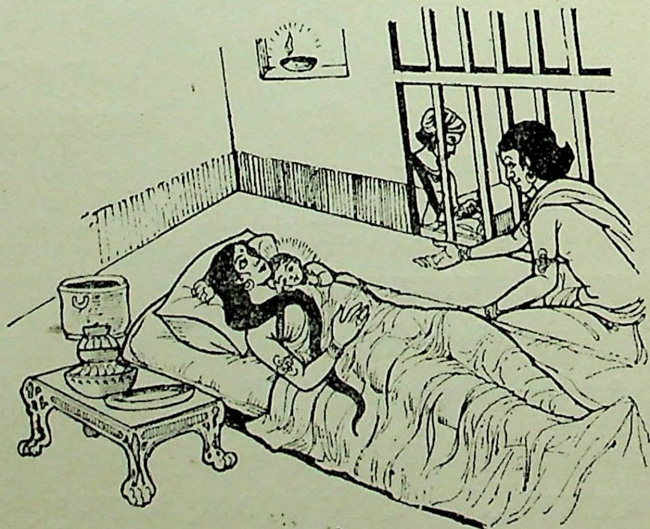
जगत् असंख्य है, देवी-देवता भी अनगिनत हैं। हर जगत् के ईश्वर नारायण भी अलग हैं। वे सम्पूर्ण जगत् सहित महाप्रलय के समय अपने आधारभूत अक्षर ब्रह्म के मन में बीजरूप में स्थित हो जाते हैं। इन सब ईश्वरों के ईश अक्षर ब्रह्म हैं। अक्षर ब्रह्म के भी ईश सर्वेश्वर राजाधिराज अक्षरातीत परमात्मा श्री राज हैं। वे ही परम सत्य हैं। शेष सब उनकी लीला के रूप हैं। श्यामा उनकी आनन्द-शक्ति है। श्री देवचन्द्र जी ने 'सुन्दर साथ' को श्री राजश्यामा जी की प्रेम-सेवा करने का आग्रह किया।

तब नींद में देखे गए स्वप्न की तरह ब्रह्मात्माएं अपने ध्यान में अक्षर ब्रह्म की दुनिया में उतर आयीं।[२४] ब्रज मंडल की बालाओं में उनकी 'सुरत' ने प्रवेश किया तो परमधाम की आनन्द भूमिका को भूलकर इस रंगीली दुनिया को ही घर मान बैठीं। अब वे गोपिकाएं, गोप वधुएं थीं।

ब्रह्मात्माओं की प्रणय-लीला का आनन्द अनुभव करने के इच्छुक अक्षर ब्रह्म का भी अवतरण होना आवश्यक था।[२५] भारत में तब आततायी कंस का राज्य था। अपने अहंकार में चूर वह किसी को कुछ नहीं समझता था। उसके अत्याचारों से जनता त्रस्त थी। वह स्वयं ही भगवान बन बैठा था। उसके सिवा किसी और की पूजा करने वाले दंड के पात्र बनते। तनिक-सी भूल पर भारी दंड मिलता।



देवकी कंस की बहन थीं। उनका विवाह वसुदेव से हुआ। विवाह के अवसर पर कंस ने आकाश-वाणी सुनी कि 'देवकी का पुत्र तुम्हारी मृत्यु का कारण बनेगा'। बस उसने बहन बहनोई को जेल में डाल दिया। उनके छः पुत्रों का बध कर दिया। सातवां पुत्र रोहिणी के गर्भ से बल-राम नाम से उत्पन्न हुआ। आठवें पुत्र श्री कृष्ण के जन्म के समय उन पर निगरानी और भी कड़ी कर दी गई। अक्षर ब्रह्म श्री कृष्ण इन्हीं वसुदेव देवकी के पुत्र बने। इनके जन्म से पूर्व त्रिलोकीनाथ विष्णु भगवान श्री कृष्ण ने देवकी वसुदेव को दर्शन देकर आने वाले बालक के विषय में बताया कि वे भगवान के अवतार हैं। उनका आविर्भाव होने पर उन्हें आप नन्द जी के पास गोकुल गांव में छोड़ आइये।



नन्द जी के घर प्रवेश करने से पूर्व श्री कृष्ण के कलेवर में अक्षरातीत परमात्मा श्री कृष्ण का आवेश समाविष्ट हुआ। गोपिकाओं के रूप में ब्रह्मात्माओं का अपने प्रियतम पूर्ण ब्रह्म श्री कृष्ण के प्रति सहज स्नेह उमड़ पड़ा। माया के वशीभूत उन्हें यह तो स्मरण नहीं रहा था कि श्री कृष्ण से उनका क्या सम्बन्ध है—बस वे तो उनकी दीवानी थीं।

यह उनके पूर्व संस्कार और पूर्ण प्रेम का परिचायक था। आदर्श प्रेम का ऐसा उदाहरण संसार में अन्यत्र नहीं मिलता। परमात्मा के प्रति कैसा प्रेम हो ? यह प्रश्न पूछने पर श्री देवचन्द्र गोपियों की दिनचर्या की ओर संकेत करते। वे स्मरण दिलाते कि आपने ब्रज में गोपियों के रूप में जैसा प्रेम श्री कृष्ण से किया, परमात्मा को पाने के लिए पुनः वैसा ही अनुराग पैदा करो।

ब्रज भूमि का कण-कण परमात्मा का स्पर्श पाकर उल्लसित हो उठा। ब्रज के पशु-पक्षी भी श्री कृष्ण का संग पाने को उत्सुक रहते। प्रकृति झूम उठी थी। ग्वाल-बाल उनके रंग में रंग गए। गोपियों का तो उनसे अनादि सम्बन्ध था ही। वे एक क्षण भी उनके बिना न रह पातीं। भोजन पकाते, दही बिलोते, झाड़ू लगाते, संसार के सभी काम करते कन्हैया की स्मृति उनमें बराबर बनी रहती। रोम-रोम से कन्हैया का नाम मुखरित होता। दूध-दही बेचने के बहाने वे कन्हैया से मिलने जातीं, खेल-खेल में श्री कृष्ण दही माखन ग्वालों में बांट देते। ग्वाले भाग जाते। गोपियां कौतुक में भरकर श्री कृष्ण के संग रसमयी क्रीड़ाओं में मग्न हो जातीं। इन्हीं गोपियों के लिए रसखान कवि ने कहा :—

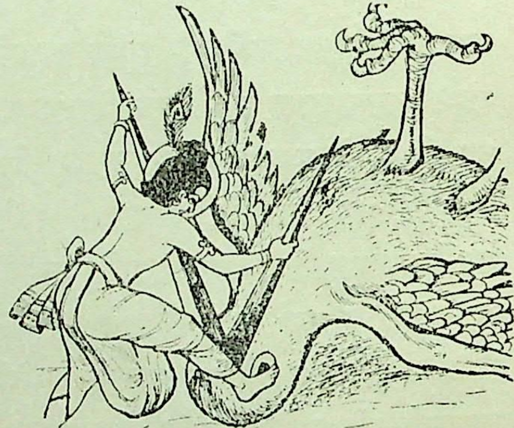
'शेष महेश, दिनेश सुरेशहु, जाही जपें पर पार न पावैं।
ताही अहीर की छोहरियां, छछिया भरि छाछ पे नाच नचावैं॥'

आज भी संत जन, गोपी-कृष्ण प्रेम को आदर्श मानकर परमात्मा को पाने का यही सबसे सुगम और सीधा उपाय बताते हैं।

सम्राट कंस के अत्याचारों से त्रस्त मथुरा राज्य के निकट ब्रजभूमि मरुस्थल में हरियाली की तरह थी। उसके सताए लोग यहां त्राण पाते। प्रजा खुशहाल थी। ब्रजमण्डल की शांति को भंग करने तथा श्री कृष्ण को मारने के लिए राजा कंस ने अनेक भयानक राक्षसों को भेजा। "झूला गिराकर श्री



कृष्ण ने शकटासुर को मार डाला। पूतना सुन्दर स्त्री के वेश में अपने स्तनों में विष लगा कर आई। श्री कृष्ण दूध के साथ उसके प्राण भी पी गए। बकासुर जबड़े खोल कर बैठ गया। बड़ी गुफा समझ कर ग्वाल-बाल उसमें घुस गए। उनको बचाने के लिए श्री कृष्ण ने जबड़े फाड़ कर बकासुर को मार डाला। इस प्रकार अनेक असुरों का संहार करके श्री कृष्ण ने गोकुल गांव को अपने आनन्ददायी संरक्षण में रखा।



माया से मोहित ब्रह्मा जी श्री कृष्ण की परीक्षा करने चले आए। ब्रह्मा जी ने सब ग्वाल-बालों को गायों सहित गुफा में बन्द कर दिया। श्री कृष्ण स्वयं सब रूपों में प्रकट हुए तो ब्रह्माजी ने उनकी स्तुति की।

इन्द्र देवता का मान भंग करने के लिए श्री कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत का रूप धारण कर सबकी पूजा ग्रहण की। कुपित होकर इन्द्र ने सात रात आठ दिन तक मूसलाधार वर्षा की। जिसमें ब्रह्मांड प्रलय हो गया परन्तु श्री कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उंगली पर उठाकर प्रियजनों की रक्षा की और इन्द्र का मान भंग किया।

परमात्मा को हम अपना आप समर्पण कर दें तो वे हमारी अन्तर की कुवृत्तियों, बाह्य आकर्षणों तथा विघ्नों से रक्षा करके हमें अपनी प्रेममयी छत्रछाया में रखते हैं। श्री कृष्ण की आनन्दमोहिनी क्रीड़ाओं का श्रीमद्-भागवत में तथा सूरदास के पदों में बड़ा मनोहारी वर्णन है।

तारत्तम के प्रकाश में श्री देवचन्द्र जी ने समस्त संसार के लोगों के मन में उठने वाले एक ज्वलंत प्रश्न को सरल बना दिया। इतने देवी-देवता और फरिश्तों आदि की पूजा के कारण अनेक संप्रदाय बन गए हैं। अपनी पूजा के लोभ में देवी-देवता लोगों को प्रलोभन में फंसाए रखते है। सिद्धियां देकर उनकी छोटी-मोटी इच्छाएं पूरी कर देते हैं। तार्किक मन उनमें उलझ कर रह जाता है कि किसको माना जाय, किस की पूजा की जाय ? भगवान के लीला रूपों में मुग्ध मानव उनके अविनाशी अनादि स्वरूप को भूल गया।

श्री देवचन्द्र जी ने स्पष्ट किया कि नारायण (महाविष्णु) स्वरूप श्री कृष्ण क्षर ब्रह्मांड के ईश्वर हैं—सब देवी-देवता इनकी सृष्टि हैं। अक्षर ब्रह्म, उत्तम पुरुष (अक्षरातीत) के अंग हैं। एक पूर्ण ब्रह्म उत्तम पुरुष अक्षरातीत की उपासना से सबकी उपासना हो जाती है। वृक्ष के मूल में डालने से जल पात-पात तक स्वयं ही पहुँच जाता है। गीता और श्रीमद्भागवत इस बात की साक्षी देते हैं कि सब ईश्वरों के ईश एक परमेश्वर की उपासना ही सीधी सच्ची उपासना है। देवी-देवताओं की उपासना को अविधिपूर्वक[७] बताया गया है। अनेक हिन्दू संप्रदायों तथा अन्य सब धर्मों के मानने वाले इस बात को जानते तो हैं, परन्तु मानते नहीं। एक ही ईश्वर की उपासना पर सब स्थिर हो जायँ तो धर्म के नाम पर झगड़े मिट जायँ और विश्व शान्ति की राह प्रशस्त हो जाय।

जिस प्रकार परमधाम के अखंड सौंदर्य, आनंद और चेतन अस्तित्व का

परिचय देने के लिए परमात्मा ने इस सृष्टि का आयोजन किया, उसी प्रकार परमात्मा के सामर्थ्य एवं महानता का परिचय दिलाने के लिए सृष्टि के देव प्रकट होते है। मानव उन देवों की उपासना में सर्वेश्वर को भूल जाता है। शास्त्रों में उनके स्वरूप का परिचय दिया गया है। तारत्तम ज्ञान का प्रकाश पूर्ण ब्रह्म एकेश्वर को अनेक देवों से अलग दिखा देता है और द्वैत या दुई, में भटक जाने से बचाता है।

श्री कृष्ण के कलेवर में परमात्मा के क्षर (विष्णु) अक्षर एवं अक्षरातीत की शक्तियों का आवश्यकतानुसार प्रकटीकरण हुआ। बड़े-बड़े विद्वान भी इस रहस्य को जान न पाए। श्री देवचन्द्र जी ने श्री कृष्ण की तीन लीलाओं के लिए तीन स्वरूपों को प्रकट करते हुए कहा :—

'वसुदेव देवकी को विष्णुस्वरूप श्री कृष्ण ने दर्शन देकर आने वाले बालक के ब्रह्मरूप होने का परिचय दिया। वसुदेव जिस बालक को लेकर गोकुल गांव आए, वे अक्षरातीत परमात्मा का आवेश धारण किए हुए श्रीअक्षरब्रह्म के अवतार थे। आनंद लीला देखने हेतु उनका (अक्षर ब्रह्म का) अवतरण हुआ था। ब्रज और रास में रसमयी क्रीड़ाएँ करनेवाले कृष्ण अक्षरातीत ब्रह्म हैं।'[१८]

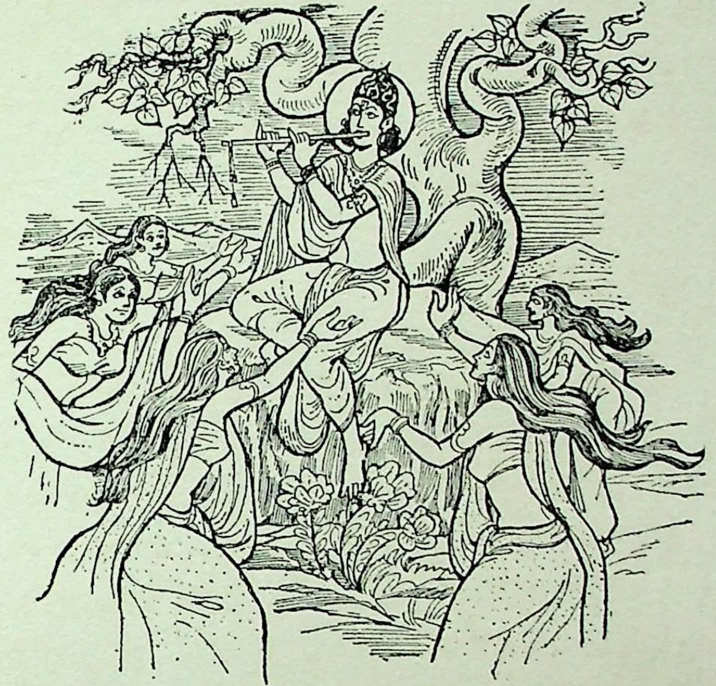
सृष्टि रचना दो प्रकार से होती है। नश्वर स्थूल ब्रह्मांड बनाने वाली शक्ति कालमाया कहलाती है। चिन्मय ब्रह्मांड योगमाया रचित होते हैं। कृष्ण की बाल लीला कालमाया के ब्रह्मांड में हुई। उस समय गोपियों का श्री कृष्ण से सहज स्नेह था, परन्तु उन्हें इस बात की तनिक भी स्मृति नहीं थी कि श्री कृष्ण के साथ उनका सम्बन्ध क्या है? ग्यारह वर्ष, बावन दिन के उपराँत सृष्टि-रचना के मूल उद्देश्य को पूर्ण करने हेतु रासलीला का आयोजन किया गया।

रासलीला

एक दिन श्री कृष्ण गौएँ चराने बन में गए। ग्वाल बाल गौओं को लेकर लौट आए। उधर योगमाया का प्रसार हुआ। योगमाया के ब्रह्मांड में श्री कृष्ण ने अपने चैतन्य स्वरूप को प्रकट किया। अपनी आत्म स्वरूप प्रेयसी गोपिकाओं को भी चिन्मय ब्रह्मांड में बुलाने के लिए उन्होंने वंशी की तान छेड़ी।[१९] वंशी के स्वरों में गोपिकाओं ने अपने नामों की ध्वनि सुनी तो उनकी मोह-निद्रा भंग हुई।

प्रियतम से मिलने को आकुल-व्याकुल जो जैसी बैठी थीं बेसुध-सी भाग

चलीं। नहाने वाली अपने अधखुले अंग संभालना भूल गईं। श्रृंगार करने वाली ने उलटे सीधे आभूषण पहने। भोजन परोसने वाली के हाथ से बर्तन गिर गए। फिर भी मन की गति से शरीर चल न पा रहा था। योगमाया ने उन्हें चिन्मय स्वरूप श्रृंगार प्रदान किया। चिद्रूप चिन्मय वृन्दावन में रास मंडल रचा गया।



अक्षर ब्रह्म की पूरी चित्तवृत्ति रास लीला में रम गई—कालमाया के ब्रह्मांड का प्रलय हुआ[३०]। इसी महाप्रलय की कहानी विभिन्न शास्त्रों और गाथा मिथकों में वर्णित है।

वृन्दावन के थिर चर पशु पक्षी सभी चिन्मय थे।[३१] वहीं श्री कृष्ण और गोपियों ने आनंदमयी रास क्रीड़ाएँ कीं। संसार के शब्दों में उस लीला का वर्णन करना असंभव है। तो भी, संसार का मोह छुड़ाने के लिए दुनिया के व्यवहारों और सम्बन्धों के सुख से अधिक और स्थायी आनंद, आत्मा परमात्मा के मिलन में है, यह जानकर ही आत्मा नश्वर का मोह छोड़कर अखंडानंद की ओर प्रवृत्त होती है। इसीलिए यह वर्णन किया गया। चिन्मय स्वरूप में आत्मा परमात्मा की रसमयी क्रीड़ाओं का नाम रास है। कृष्ण की रसमयी लीलाओं का श्रवण, मनन और ध्यान करने से आत्मा तृप्त होती है, संसार के आकर्षणों से मन मोहित नहीं होता।

ब्रह्मात्माओं ने सुख-दुख देखने की इच्छा प्रकट की थी। ब्रज और रा-स लीला में अब तक उन्हें प्रियतम मिलन का सुख ही मिला। तनिक दुख का आभास दे कर उनकी इच्छा पूर्ण करना आवश्यक था।

दूसरे अक्षर ब्रह्म इस प्रणय लीला में तन्मय हुए भूल गए कि वे यहां क्यों



हैं।[३२] इस बात की सुधि दिलाना ग्रावश्यक समझकर अक्षरातीत ब्रह्म ने अक्षर ब्रह्म के स्वरूप से अपना आवेश खींच लिया। ब्रह्मात्माओं को अपने सम्मुख प्रणयी वेष में देखकर अक्षरब्रह्म अन्तर्ध्यान हो गए। उनके प्रणय निवेदन के अधिकारी वे नहीं थे।

भागवतकार ने श्री कृष्ण के अन्तर्ध्यान का कारण बताते हुए कहा है कि गोपिकाओं के मन में अहंकार जगा कि ईशों के ईश श्री कृष्ण हमारे वश में हैं। हम जो चाहें उनसे करा लें—प्रेम मार्ग में अहंकार को स्थान कहां! उनको अहंकार से मुक्त करने के लिए कृष्ण अन्तर्ध्यान हुए। साधना की सर्वोच्च मंजिल पर पहुँचकर भी साधक और भक्त लोग अहंकार के कारण पथ भ्रष्ट हो जाते हैं।

गोपियां प्रियतम श्री कृष्ण को न पाकर आकुल-व्याकुल हो गईं।" वृन्दावन का कोना-कोना देख डाला। आगे प्रलय का अंधकार छाया देख लौट

पड़ीं । श्री कृष्ण कहीं न मिले । दीवानों की तरह वन-बेलों से उनका पता पूछ रही थीं । विरह के शोक से एक कदम भी चल पाना कठिन हो गया तो मूर्च्छित-सी होकर गिरने लगीं । इन्द्रावती सखी ने कुछ साहसी सखियों के संग मिलकर सबको ढाढस बंधाया । 'अरी सखियों ! इस तरह जी हल्का क्यों करती हो । हमारे प्रियतम श्री कृष्ण हम से अलग नहीं रह सकते । आओ, हम उनकी लीलाओं का अनुकरण करें—वे आते ही होंगे ।'

फिर क्या था; राधा जी को श्रीकृष्ण बनाकर वे ब्रज लीला के खेल दोहराने लगीं ।[३४] वृन्दावन में पुनः ब्रज के खेल खेले गए । रासलीला के लिए ज्यों ही राधा ने ओठों पर वंशी रख कर नाद छेड़ा—गोपियों को ऐसा लगा मानो श्री कृष्ण ही लौट आए हों । तब इतना आनन्दोल्लास हुआ कि उनके मध्य नये स्वरूप और श्रृंगार से सुसज्जित श्री कृष्ण प्रकट हुए । गोपियों की मनोकामनाएं पूर्ण हुईं । इस दुःख-द्वन्द्व भरी सृष्टि में आत्माओं को प्रियतम के वियोग के उपरान्त अंतरंग मिलन का आनंद मिला तो दुःख में सुख अनुभव कराने का लक्ष्य पूरा हुआ ।

परमधाम में ब्रह्मात्माएं मोहिनी तन्द्रा से जगीं । अक्षरब्रह्म ने रासलीला के माध्यम से प्रियतम प्रिया के अनन्य प्रेम और संयोग लीला को देखा तो आनंद में डूब गए । इस प्रकार सत्य ज्ञान और आनंद एक-दूसरे से पूर्ण हुए । अक्षर ब्रह्म के हृदय में वह लीला स्थायी रूप से अंकित होने के कारण अखंड हुई । उनकी ज्ञान शक्ति की प्रतीक वेद ऋचाओं ने उस झलक को देखा तो स्वयं उस अनुभव को प्राप्त करने के लिए मचल उठीं ।

वह अनुभव दिलाने के लिए प्रलय के उपरान्त पुनः ज्यों का त्यों ब्रह्मांड बना ।[३५] इसी प्रलय और सृष्टि रचना का वर्णन पुराणों में है । इस ब्रह्मांड में पुनः ब्रजमंडल बना । गोपिकाओं में वेदऋचाओं की 'सुरत' ने प्रवेश किया—



श्री कृष्ण में अक्षर ब्रह्म वेद ऋचाओं की इच्छा पूर्ण करने के लिए अवतरित हुए। सात दिन गोकुल गांव में चहल-पहल रही। तदन्तर कंस ने अक्रूर को भेजकर श्री कृष्ण को मथुरा में बुलाया। वहाँ श्री कृष्ण ने आततायी कंस को उसके साथियों सहित मार डाला। अपने माता-पिता देवकी वसुदेव को बंधन से छुड़ाया। अपने नाना उग्रसेन को राज्य दिया। यहां से ग्वाल वेष उतार कर गोकुल भेज दिया और द्वारिका के राजा के रूप में राजसी शृंगार किया।

यहां से विष्णु भगवान के सोलह कला संपूर्ण अवतार की लीला प्रारंभ होती है। उधर ब्रज में गोपियां श्री कृष्ण के वियोग में डूबी रहीं। शरीर छोड़ने पर वे अखंड रास मंडल में पहुँची। कृष्ण उनके इतने निकट थे, परन्तु उनसे मिलने का अब कोई कारण नहीं था।[३६] इससे यह स्पष्ट होता है कि जिस भूमिका की आत्माएँ होती हैं, वहीं के ईश के प्रति अनुरक्त रहती हैं। अक्षरातीत ब्रह्म सब के ईश होने के कारण सबकी पूजा स्वीकार करते हैं।

श्रीमद्भागवत का एक प्रसंग सुनाते हुए श्री देवचन्द्र जी कहते थे कि त्रिलोकी के स्वामी स्वयं नारायण भी ध्यान साधना द्वारा अपने आराध्य की स्तुति करते हैं।[३७] लक्ष्मी ने उनके विषय में जानने की इच्छा व्यक्त की। अनेक कल्पांत तपस्या करने पर भो नारायण लक्ष्मी जी को स्पष्ट रूप से अपने आराध्य का परिचय न दे पाए। इसीलिए उन्हें श्रीकृष्ण अवतार लेना पड़ा। लक्ष्मीजी यहां रुक्मणी बनी। रुकमणी से विवाह के अवसर पर उनकी सखियां मंगलाचार में श्री कृष्ण के बाल स्वरूप की महिमा गायन कर रही थीं तो श्री कृष्ण पुनः ध्यानस्थ हुए—लगा वे मूर्च्छित हो गए हैं—इस प्रकार के संकेत से लक्ष्मी जी को बताया गया कि जिनका आवेश उस स्वरूप पर था, वे ही मेरे आराध्य हैं।

विष्णु अवतार योगीराज श्रीकृष्ण ने जरासंघ आदि अनेक आततायी लोगों का वध किया। कौरव पांडव युद्ध करवा कर धरती को अमानवीय आसुरी शक्तियों से मुक्त किया।[३८]

कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि में श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता का जो आध्यात्मिक उपदेश दिया, वह विश्व मान्य दर्शन ग्रन्थ है। गीता में भगवान ने निष्काम कर्मयोग की नई व्याख्या दी। फल की इच्छा किए बिना कर्तव्य कर्म को करते जाने से मनुष्य कर्म बंधन में नहीं पड़ता। अन्त में अनन्य भाव से प्रेम करते

हुए एक परमात्मा को अर्पित हो जाने से आत्मा उसके धाम में प्रवेश पाती है।



क्षर ब्रह्मांड के अधिष्ठाता अक्षर ब्रह्म हैं, उनसे भी अलग, अतीत उत्तम पुरुष ही सबके परमेश्वर हैं। गीता का यही संदेश ही 'परम गुह्य' विद्या कहा गया है।[३९]

एक सौ दस वर्ष की लीला में धरती को आसुरी वृत्तियों से मुक्त करके श्रीकृष्ण विष्णुलोक पधारे।

श्री देवचन्द्र जी जब कथा करते तो श्रोतागण अपलक उन्हें निहारते रहते—बड़े-बड़े प्रकाण्ड पंडित विद्वान उनकी विद्वता पर मुग्ध थे। शास्त्र पुराणों के उलझे हुए प्रश्नों का हल उन्हें सरल भाषा में मिल जाता। श्री कृष्ण के स्वरूप और लीला के तीन भेद सुन कर लोग चौंकते। उनसे विवाद करने आते परन्तु उनकी मधुर ओजपूर्ण वाणी से उनके संदेह निवारण हो जाते। वह मूल स्वरूप को लीला रूपों से पृथक् करके



परब्रह्म परमात्मा की प्रतिष्ठा करना चाहते थे। ब्रज और रासलीला में गोपी-कृष्ण प्रेम को लेकर तर्क बुद्धि वाले लोग अनेक हास्यास्पद बातें कहते। परन्तु परमात्मा और उनकी अंगरूपा आत्माओं की लीला ही कृष्ण लीला है। इस लीला-वपु की गाथा सुन कर सबके मन के कल्मष धुल जाते।

रासलीला उपरान्त परमधाम में ब्रह्मात्माओं की मोह निद्रा टूटी। विरह तथा दुख का अनुभव, नवीन और आकर्षक होने के कारण, उन्हें प्यारा लगा। एक बार पुनः उस अनुभव को जीने का लोभ वे संवरण न कर पाईं। थोड़ी कसक भर कर शेष रह गई थी। इस बीच धरती पर अनेक युग बीत गए—दुख और पीड़ा का अंतरंग अनुभव कराने के लिए उन्हें घोर कलिकाल में पुनः इस संसार में प्रवेश मिला। इस बार किसी एक निश्चित स्थान पर नहीं; अलग देशों, अलग जातियों, वर्णों और धर्मों में आत्माओं के ध्यान केन्द्रित हुए।

जागनी लीला

संसार की लीला नाटक के पात्रों को—जिनकी सृष्टि ब्रह्मात्माओं को लीला दिखाने के लिए हुई थी—मुक्त होने की बेला आ गई थी। ऋषि मुनि जन अवतारी पुरुषों और पैगम्बरों ने समय समय पर संसार के मानवों को संयमित जीवन जीने के उपदेश दिए।[४०] प्रत्येक देश की भाषा में ब्रह्मात्माओं, मोमिनों के अवतरण का संदेश दिया गया जिसमें कहा गया है कि ब्रह्ममुनियों के प्रताप से उन्हें मुक्ति प्राप्त होगी। इन गाथा मिथकों में व्यक्त विश्वासों के अनुसार पौराणिक व्याख्यानों को नया संदर्भ मिला।



नारायण[४१] की आत्मा (हलधर)—मुनि वेद व्यास के रूप में विख्यात हुई। वेद ऋचाओं से प्राप्त विद्या 'वेद' को उन्होंने चार खंडों में—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में बाँटा।

कर्मकांड की बहुलता में खोए ब्रह्मज्ञान को अलग करके उपनिषदों की रचना की। पुन: जनसाधारण की समझ में लाने के लिए उसी ज्ञान को कहानियों का रूप देकर पुराणों की रचना हुई।[४२]



रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथों की रचना करने के उपरान्त भी मुनि वेदव्यास तृप्त न हुए। अंत में, श्री कृष्ण की माधुर्यलीला से पूर्ण श्रीमद्भागवत का प्रणयन कर मुनि प्रेम रस में ऐसे निमग्न हुए कि निकल न पाए। वेद ऋचाओं ने श्री कृष्ण लीला को देखा अर्थात् वेद का ज्ञान प्रेम से तरंगित हुआ। श्री शुकदेव मुनि ने जीवन पर्यन्त श्रीमद्भागवत की पुण्य गाथा सुनाकर भक्तों को मतवाला बनाया। राजा परीक्षित ने मोक्ष पाने की इच्छा से एक सप्ताह में श्रीमद्भागवत का पारायण सुना। माया में बार-बार मोहित होते भ्रांत मानव को अवतारी पुरुषों ने सद्धर्म की ओर प्रवृत्त किया। धर्म के किसी एक अथवा कुछ अंगों को साध कर धर्ममय जीवन जीने की प्रेरणा सिद्ध-पुरुषों ने दी। ब्रह्मात्माओं का दर्शन पाने के लिए पुन: उस युग में प्रकट होने की लालसा में तपस्वी और सिद्धों ने श्वास को रोके रखा।



राजपुत्र परम त्यागी महावीर ने आत्म जय, (मन और इन्द्रियों पर विजय पाना) अहिंसा (मन वचन और कर्म से प्राणी मात्र को दुख न देना) अपरिग्रह, (न्यूनतम आवश्यकता से अधिक न रखना) विनय, शील, मित्रता, समता आदि का उपदेश दिया। यही गुण मानव को पुरुषार्थी और समाज सेवी बनाते हैं तथा संसार में स्थायी शान्ति और सुख का साधन बनते हैं।



महात्मा बुद्ध ने सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह को धर्म मय जीवन का आधार बताया। जाति-पाँति का भेद-भाव दूर करके उन्होंने सबको धर्म की शरण में

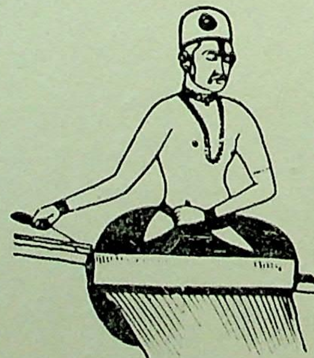
लिया । उनके उपदेशों से प्रभावित हजारों लोग भिक्षु बने, जिन्होंने एशिया भर में बुद्ध धर्म का प्रचार किया । परमात्मा और आत्मा के विषय में बुद्ध मौन रहे—जो वस्तु दिखाई न दे उसके विषय में कहना और सोचना उन्होंने आवश्यक नहीं समझा । इसलिए उनके अनुयायियों में नास्तिकता को बढ़ावा मिला । परन्तु जगत् के समस्त जीवों को पूर्ण निर्वाण मिलने तक महात्मा बुद्ध बार-बार बोधिसत्व के रूप में अवतरित होते रहे हैं—ऐसा उनके अनुयायी मानते हैं ।



जगद्‌गुरु शंकराचार्य ने वेदों के ज्ञान प्रचार के द्वारा पुनः परमात्मा और आत्मा के प्रति आस्था जगाई । परमात्मा ही अनादि अद्वैत सत्ता है । 'परमात्मा ही जगद्‌रूप है—कण-कण में व्याप्त हैं, जो दिखाई देता है वह सब ब्रह्म है' इस मत का प्रतिपादन किया । 'मैं ब्रह्म हूं', और 'जगत् मिथ्या है', इस बात को लेकर ज्ञानी जनों में अहंकार बढ़ा तो बल्लभाचार्य ने कृष्ण प्रेम की माधुरी से संसार को प्लावित कर दिया । स्वयं को, अहं को कृष्णार्पण कर दो । लीलाधारी कृष्ण मनोनुकूल रूप धारण कर तुम्हारे अंतर्मन में रमण करते रहेंगे ।

दक्षिण भारत में संत तिरवल्लुवर के भक्ति गीत घर-घर में गूंज उठे ।

रामानुज, निम्बार्क, विष्णु श्याम और मध्वाचार्य ने श्री राम और श्री कृष्ण की लीला सुना कर लोक कल्याण और परलोक का मार्ग प्रशस्त किया । आस्था और आराध्यानुसार उनके शिष्य चार सम्प्रदायों में बँट गए ।



अनेक संत मनीषियों ने त्रिविध प्रकार के लोगों के लिए ज्ञान, भक्ति और कर्म के मार्ग प्रशस्त किए ।

अनेक पंथ और सम्प्रदाय चल पड़े । उनमें परस्पर विवाद होने लगे । ज्ञान, प्रेम और भक्ति तो कम, अहंकार की वृत्ति अधिक प्रबल हुई । धर्म के नाम पर मानव-मानव में अलगाव बढ़ने लगा ।

महात्मा कबीर, गुरु नानक, दादू आदि संतों ने अपनी वाणियों से एकेश्वर



किन्तु निराकार ब्रह्म की ओर प्रवृत्त किया ।[४४] गुटों में बँटी जाति-पाँति, ऊँच-नीच, छुआछूत आदि की घुन से क्षतिग्रस्त मानवता को सम्बल प्रदान किया । परस्पर प्रेम, भाईचारा और 'रामरहीम एक हैं का संदेश लोगों को प्यारा लगा । ब्रह्मात्माओं ने संसार में आकर संघर्ष, विविधता, घृणा, हिंसा आदि का तांडव देखा, गुटों में बँटी मानवता की पीड़ा को अनुभव किया । परमात्मा के हुक्म से उन्हें विविधता दिखाने के लिए 'अनेक धर्म' दिखाई दिए । अब 'एक विश्व धर्म' के प्रकट होने की घड़ी आ गई है ।

श्री देवचन्द्र जी अपनी कथा सुनने वालों को 'सुन्दर साथ' कहकर पुकारते और उन्हें समझाते कि श्रीमद्भागवत में जिन ब्रह्ममुनियों के अवतरण द्वारा एक धर्म की स्थापना और जीवमुक्ति की घोषणा की गई है वे ब्रह्ममुनि आप ही है ।[४५] ब्रजलीला और रासलीला में प्रियतम श्री कृष्ण के साथ रमण करनेवाले आप ही थे । उठो, अपनी मोह-निद्रा को त्याग कर संगी आत्माओं को जगाओ ।[४६] असार संसार के जीवों को महामति (बुद्ध) के प्रवेश द्वारा प्रेम का संदेश देकर उनके लिए मुक्त सुखों के भण्डार खोल दो । जागनी लीला की बेला आ गई है । वे संतों की वाणियों को सत्संग में गाने का आग्रह करते ।

स्वामी हरिदास जी, जिनके पास बैठकर श्री देवचन्द्र जी ने राधा-माधव की भक्ति की थी—स्वयं आकर उनके शिष्य बने ।[४७] श्री देवचन्द्र जी के ओजस्वी ज्ञान को सुनकर दूर-दूर से विद्वान आने सगे । इनकी कथा-चर्चा सुन कर वे कहीं फिर जा न पाते ।

श्री देवचन्द्र जी जब परमधाम का वर्णन करते तो लोगों को साक्षात् दर्शन होते थे ।[४८] इनके हाथों स्वयं कृष्ण भोजन आरोगते । प्रत्यक्ष लीला ने सैंकड़ों सद्गृहस्थों को आकर्षित किया । श्री देवचन्द्र जी निजानन्द स्वामी के नाम से विख्यात हुए ।

रात बड़ी देर तक कथा होती। घर जाने की किसी को सुधि भी न रहती। परमधाम, ब्रज और रास लीला का वर्णन इतना जीवंत और मार्मिक होता कि श्रोता आत्मविभोर हो बैठे रह जाते।

एक चुगल ने कोतवाल से जाकर कहा—'गांगजी भाई के घर स्त्री-पुरुष रात देर तक न जाने क्या करते रहते हैं।'[४९] कोतवाल ने दो चौकीदारों को छानबीन करने के लिए भेजा। चुगल दीपक दिखाकर चला गया। वे बेचारे दीपक के पीछे चलते रहे। एक तो रात भर कुएँ के आस-पास मंडराता रहा। दूसरा सीधा दस कोस निकल गया। दोनों ही उपहास के पात्र बने चुगलखोर को कोसते रहे। इस प्रकार की कौतुकपूर्ण बातों को सुनकर श्रोताओं की संख्या और बढ़ने लगी। प्रत्यक्ष लीला के अनुभव से चारों ओर आनन्द का प्रवाह उमड़ पड़ा।



दीवान केशव ठाकुर के परिवार के लोग भी इनकी कथा सुनने के लिए आने लगे। उनके बड़े लड़के गोवर्धन ठाकुर नित्य कथा सुनने जाते थे। उनसे चर्चा सुनकर उनके छोटे भाई श्री मेहराज ठाकुर भी निजानन्द स्वामी श्री देवचन्द्र जी की शरण में आए। तब उनकी आयु केवल बारह वर्ष की थी।[५०]

गुरु-शिष्य मिलन

गुरु देवचन्द्र जी ने मिलते ही श्री मेहराज में 'इन्द्रावती' की कुशल आत्मा को परख लिया।[५१] सम्पूर्ण रासलीला की अगुआनी तो कुशल नायिका, उनकी आत्मा, इन्द्रावती ने ही की थी। अब जागनी लीला का पूर्ण दायित्व संभालने की सामर्थ्य इनमें देख कर सत्गुरु देवचन्द्र जी ने धीरे-धीरे अपने जीवन भर की साधना की पूँजी और धर्म,

दर्शन और अध्यात्म की कुँजो कुछ ही दिनों में मेहराज को सौंप दी ।



'तारतम मन्त्र' का प्रकाश मिलते ही श्री मेहराज को संसार असार लगने लगा ।[५२] उन्होंने विचार किया कि हमारा पूर्व सम्बन्ध श्री राज जी, अक्षरातीत परमात्मा से है, तो हमें सद्गुरु देवचन्द्र जी की तरह परमधाम दिखाई क्यों नहीं देता ! हमारी साधना या संकल्प में अवश्य ही कोई कमी रह गई होगी । बस फिर क्या था, उन्होंने तन-मन और जीवन को कसौटी पर कस दिया । घर की अनेक वस्तुएँ गरीब साथियों में बाँट दीं । आहार घटा दिया । दिन भर में बतीस माशा ही प्रसाद रूप में लेते । इधर-उधर घूम कर देखते—कहीं मन विचलित तो नहीं होता । इन्द्रियों को उनके विषयों से मोड़ लिया । शरीर सूखने लगा—चर्चा सुनते उनकी आँखों में अश्रु बहने लगते । ढूँढ-ढूँढ कर अपने अवगुण निकालते गए । उनकी आत्मा तो पहले ही निर्मल थी । उस पर तनिक भी माया का लेश न रहने दिया ।

उनके गिरते स्वास्थ्य से सत्गुरु चिन्तित हुए ।[५३] कारण पूछने पर मेहराज ठाकुर रोने लगे—'गुरुवर ! आपकी तरह हम परमधाम क्यों नहीं देखते ।' श्री देवचन्द्र जी ने कहा—'मोहे उठा कर तुम बैठो'—मोह और मैं पन से हटकर मुझ में एक रूप हो जाओगे तो सब स्पष्ट हो जायेगा । श्री देवचन्द्र जी ने मेहराज

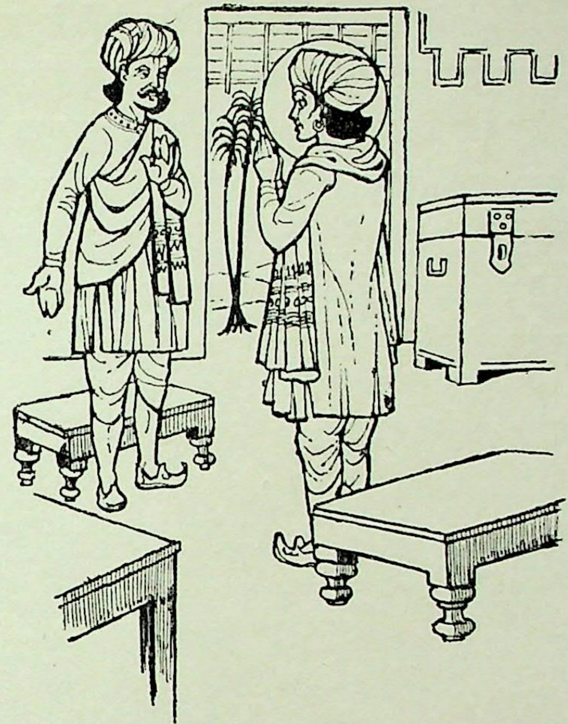
ठाकुर के सिर पर हाथ रख कर आशीष दिया। आकुल आत्मा तत्क्षण आश्वस्त हुई—भ्रम का निवारण हुआ। अपने मूल स्वरूप को देखा तो मन की दाह मिट गई।

श्री देवचन्द्र जी ने तारतम ज्ञान द्वारा संसार में फैले सभी 'धर्मों' को शुद्ध रूप में देखने का दृष्टिकोण श्री मेहराज को दिया। उन्होंने कहा—'संसार में विशेष धर्मों को अलग-अलग मानने वालों ने धर्म के नाम द्वेष फैलाया है। धर्म ग्रंथों के मनमाने अर्थ करके जनता को गुमराह किया है। सारे वर्णों, धर्मों एवं विभिन्न वर्गों के मानव-समुदायों में ब्रह्मात्माओं का अवतरण हुआ है। जहाँ-जहाँ, जिन-जिन व्यक्तियों में विलक्षण ज्ञान का प्रकाश है, वहाँ-वहाँ अपनी ब्रह्म आत्माएँ हैं। जाति-पाँति, वर्ण-वर्ग का भेद उनमें नहीं।

उच्च राजसी घरानों में दो महान आत्माएँ 'साकुंडल' और 'साकुमार' प्रकट हुई हैं। उन दोनों के मिल जाने पर विश्व में धर्म के सत्य-स्वरूप की ओर एक विश्व धर्म की स्थापना होगी। हिन्दुओं के वेदशास्त्र और मुसलमानों के कुरान में ब्रह्मसृष्टि (मोमनों) के अवतरण की बात कही गई है। हे मेहराज ! तुमसे उन सबके अर्थ खुलेंगे। परमेश्वर की तरह धर्म भी एक ही है। इस बात को लोग समझेंगे। कलियुग के प्रभाव से धर्म विरुद्ध बातें भी धर्म कह कर लोगों को समझाई जाती हैं। धर्म का वास्तविक स्वरूप संसार की दृष्टि से ओझल है। तुम्हें सत्य धर्म का प्रकाश दिखा कर जिज्ञासु और धर्म पिपासु जनों को अद्वैत की राह पर लाना है।'

श्री मेहराज की अरब यात्रा

श्री मेहराज स्वभावतः ही सांसारिक गतिविधियों से उदासीन एवं एकदम निवृत्त हो चले थे।[५४] गांगजी भाई की बहन बाल बाई ने सलाह दी कि इन्हें लौकिक काम में लगाया जाय। श्री देवचन्द्र जी ने गांग जी भाई के भ्राता खेताभाई को अरब देश से लौटाने श्री मेहराज को भेजा। खेताभाई कई वर्षों से वहाँ अमूल्य वस्तुओं का व्यापार कर रहे थे। गांगजी भाई का परिवार उनसे मिलने को उत्सुक था। दूसरे, उनकी अपार सम्पदा से धर्म कार्य सम्पन्न हो पाता। श्री मेहराज को प्रत्यक्षतः लौकिक कार्य के लिए ही भेजा गया, परन्तु

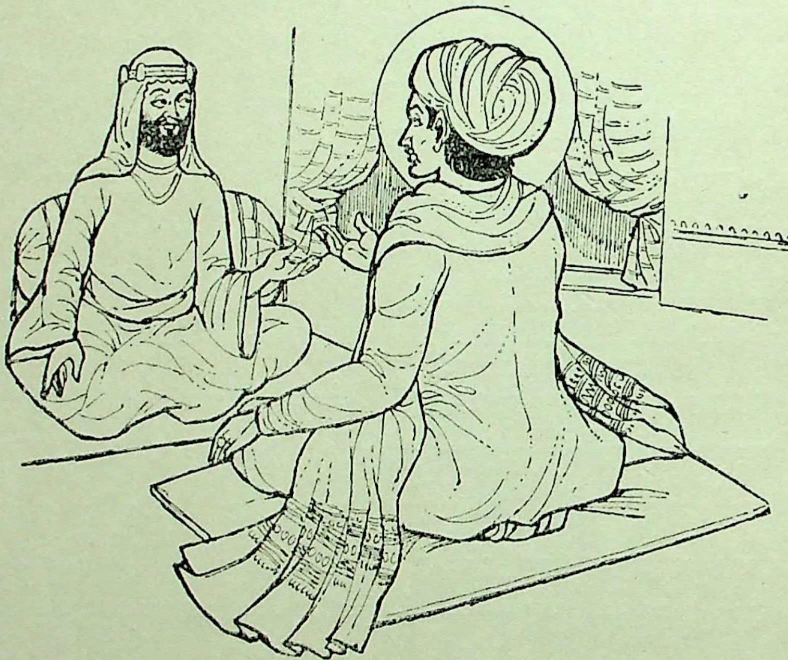


परोक्षत: एक महान कार्य सम्पन्न हुआ। अरब में पांच वर्ष तक लगातार रहने पर उन्हें इस्लाम धर्म - दर्शन और अरब देशों की संस्कृति को निकट से देखने-जानने का अवसर मिला। बीस दिन जहाज में बीते। श्री मेहराज खेताभाई से मिले तो उन्हें अपार हर्ष हुआ। वे इनकी अध्यात्म चर्चा से प्रभावित हुए। उन्होंने स्वदेश लौटने की इच्छा व्यक्त करते हुए कार्य-व्यवहार सम्भालने में श्री मेहराज से सहायता मांगी। इतना बड़ा व्यापार छोड़ना कठिन था और उसे बटोरने में चार वर्ष लग गए। पर खेताभाई अचानक चल बसे। वह वहाँ अकेले थे। उनकी कोई सन्तान न थी। पूरी चल-अचल सम्पदा पर हाकिम की मुहर लगा दी गई। मेहराज ने उस सम्पत्ति को वापिस लौटाने के लिए बहुत प्रयास किया। सरकारी कार्यालयों के चक्कर लगाए परन्तु सुनवाई न हुई।

परदेश में श्री मेहराज अकेले उदास बने घूम रहे थे कि एक आरब के वेष में उन्हें दैवी शक्ति का सहारा मिला।[५५] उस पुरुष ने बताया कि जुमा (शुक्रवार) की निमाज को सुलतान निकले तो दामन पकड़ कर न्याय मांगना और कहना कि कियामत के दिन इसी प्रकार छेड़ा झटक कर न्याय लूँगा।

दूसरे दिन मेहराज ने वही किया।[५६] दामन झटकने से खलीफा के चोगे के कंधे की कस टूट गई। सिपाही मेहराज को मारने दौड़े। तब खलीफा ने रोक कर बात पूछी। श्री मेहराज ने कहा—'मेरी सम्पत्ति को आपके कर्मचारियों ने जबर्दस्ती अपने संरक्षण में ले लिया है। मुझसे न्याय न किया गया तो कियामत के दिन जब आपका हाथ खुदा के हाथ में होगा तो इन्साफ मांगूंगा। मैं अपने गले का बोझ आपके गले में डाल रहा हूँ—बात अब आपके हाथ में है।'

श्री मेहराज के जोश भरे वचनों से कर्मचारी स्तब्ध रह गए। एक परदेशी के साथ राज कर्मचारियों ने अन्याय किया है, यह सुनकर खलीफा दु:खी हुआ और कियामत की बात सुनकर चौंक पड़ा। दूसरे ही दिन उसने श्री मेहराज को दरबार में आमन्त्रित किया। सम्मानपूर्वक बिठाया। हिन्दुस्तान के धर्म और संस्कृति की बातें पूछीं। इतनी छोटी-सी आयु में मेहराज ठाकुर के अध्ययन और ज्ञान गर्भित सम्भाषण से खलीफा दंग रह गया। उनका सारा सामान लौटा देने का आश्वासन देकर विदा किया।



श्री मेहराज को खेताभाई की सम्पदा तो मिली, परन्तु दो दिन भी न बीते कि एक भयानक आग में सब जल गया।[५७] खेताभाई ने पहले ही कह दिया था कि मेरी कमाई ईमानदारी की नहीं है, इसलिए इसका उपयोग धर्म-कार्यों में नहीं हो सकेगा। लोग प्राय: काले धन का उपयोग धर्म-संस्थाओं में करवाते हैं, तभी तो उसका अपेक्षित प्रभाव नहीं होता।

श्री देवचन्द्र जी को जब सूचना मिली कि मेहराज ठाकुर परदेश में अकेले जूझ रहे हैं तो उन्होंने अपने पुत्र बिहारी जी तथा गांग जी के सुपुत्र श्याम जी को उनकी सहायता के लिए भेजा। मेहराज ठाकुर उस अग्नि से जो कुछ बचा पाये थे, उसे उन्होंने सौंप दिया। कुछ कार्य व्यवहार शेष रहा।

उसे निपटा कर ही चलने की बात की । बिहारी जी जल्दी लौटना चाहते थे । सामान लेकर स्वदेश लौटने के लिए नौका पर सवार हुए कि अचानक नाव ने झटका खाया और रत्न जड़ित कटार सहित सम्पत्ति पानी में बह गई । फिर भी जितना कुछ बचा था उसे लेकर बिहारी जी जामनगर आए । उन्होंने अपनी सफाई देते हुए श्री मेहराज ठाकुर पर झूठे आरोप लगाए । श्री देवचन्द्र जी खामोश रहे । मेहराज से मिले बिना वे कुछ नहीं कहना चाहते थे ।[५८] मेहराज वापिस आ रहे हैं—यह सूचना मिलते ही वहां के राजा से किसी ने फिर चुगली खाई कि ठाकुर विदेश से बहुत सा धन ला रहे हैं । राजा ने अपने सिपाही दौड़ाए और मेहराज ठाकुर के पास जो कुछ बचा था, खजाने में जमा हो गया । यही नहीं, जब तक पूरी जांच न हुई तब तक दो माह के लगभग श्री मेहराज को हिरासत में रहना पड़ा ।[५९] श्री देवचन्द्र जी इन सब बातों से अनभिज्ञ थे । वे तो हैरान थे कि मेहराज उनसे मिलने क्यों नहीं आए । श्री मेहराज अकारण बहुत सताये गए थे । वे उद्विग्न और उदासीन से रहने लगे । जामनगर छोड़ कर श्री मेहराज ठाकुर ने धरोल के राजा के यहां दीवान-पद सम्भाल लिया । अपनी वाणी में उन्होंने इसे माया के साथ युद्ध बताया, जिसमें उन्हें मात मिली ।

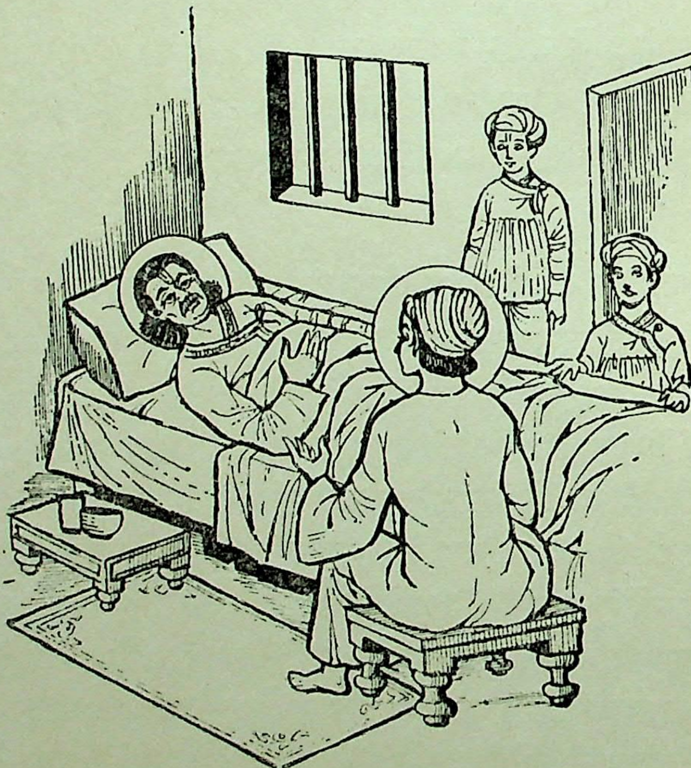
धरोल के राजा को श्री मेहराज जैसा कुशल, ईमानदार एवं परिश्रमी व्यक्ति मिला तो उन्होंने अपने राज्य का कुल भार उनके सिर पर दे दिया ।[६०] यह व्यस्तता भी मेहराज ठाकुर के मन को बांध या बहला न पाई । उनका ध्यान सद्गुरु के चरणों में रहा । उधर श्री देवचन्द्र जी को अपना अन्तिम समय निकट जान पड़ा । उनके शिष्यों में मेहराज ठाकुर ही अपनी दक्षता से आत्माओं के जागरण के कार्य को सुचारु रूप से सम्भाल सकते थे । उन्होंने बाल बाई एवं बिहारी जी की उन्हें बुलाने के लिए भेजा । उन दोनों ने जाकर श्री देवचन्द्र जी की अस्वस्थता की बात करके कुछ दवाई मंगाने की बात कही । मेहराज ठाकुर स्वयं जाना चाहते थे । परन्तु राजा नें कहा—'आपके समान कोई योग्य व्यक्ति मिले तो उसे काम सौंप कर आप बेशक चले आइये ।[६१] इसी बीच एक-दो सप्ताह निकल गए । मेहराज ठाकुर विवश थे । इधर रोग-शय्या पर पड़े-पड़े श्री देवचन्द्र जी व्याकुल हो उठे । प्रतीक्षा में ही समय निकल जायेगा, ऐसा लगा तो उन्होंने बाल बाई से कहा—'मेहराज आए बिना मैं शरीर छोड़ नहीं

पाऊंगा ।' उनकी स्तुति में उन्होंने कहा—

वे केहेते सहिग्रन कों, सिंध की भाषा में ।
मोह मोह कोड मंथन, मैं बात करों तिनसो ।।'

—मेरे शरीर पर करोड़ सिर हों, एक सिर में करोड़ों मुंह हों, एक मुँह में करोड़ जिह्वा हों, सब मिलकर भी जिनके गुण नहीं गा सकते, उन मेहराज को बुला कर लाग्रो । मैं उनसे बातें करना चाहता हूं ।' मेहराज के बिना वे व्याकुल हो उठे थे ।

मेहराज को जब बताया गया कि गुरु देवचन्द्र बार-बार उन्हें याद कर रहे हैं तो वे सब कार्य-व्यवहार छोड़ कर चले ग्राए । तीन सप्ताह तक श्री मेहराज को गुरुदेव के संग रहने का ग्रवसर मिल गया । इस बीच बहुत-सी योजनाएं बनीं ग्रौर श्री देवचन्द्र जी ने कहा—'तुम ग्रा गए, मैं ग्राश्वस्त हुग्रा । ब्रह्म एवं



ईश्वरीय ग्रात्माएं इस संसार के भ्रम जाल में मोहित हैं । उन सबको जाग्रत करके इकट्ठा करो । वैमनस्य भरी दुनिया में मेला करके मूल-मिलावा का ग्रानन्द प्राप्त करो । जागनी रास लीला प्रकट करके इकट्ठे परमधाम लौट

आओ। अपने कार्य को पूरा करने का दायित्व सौंप कर श्री देवचन्द्र जी ने अपना चोला छोड़ दिया।

सद्गुरु श्री देवचन्द्र न रहे तो लोगों ने भी मन्दिर में आना छोड़ दिया।[६२] बालबाई ने श्री मेहराज से कहा—'गुरु के बिना भला काम कैसे चलेगा? इसलिए श्री देवचन्द्र जी के पुत्र बिहारी जी को गद्दी पर बिठा कर पुनः सत्संग-कार्य आरम्भ किया जाय।' मेहराज ठाकुर ने ही आगे बढ़कर बिहारी जी को गुरु स्थान पर बिठाया। स्वयं चर्चा कथा द्वारा सुन्दर साथ को जाग्रत करते। उसके उपरान्त बिहारी जी के दर्शनार्थ भेजते।

बिहारी जी संकुचित विचारों के अनुदार व्यक्ति थे। तनिक-सी चूक होने पर भारी दंड देते। उनके आक्रोश से त्रस्त व्यक्ति मेहराज की शरण में त्राण पाते थे। मेहराज ठाकुर की पत्नी फूलबाई को भी उनका कोप-भाजन बनना पड़ा।[६३] बिना अपराध दंड को भोगने का दुःख सहन न कर पाने के कारण उन्होंने प्राण त्याग दिये। श्री मेहराज के शान्त, सहनशील नम्र स्वभाव, सद्-व्यवहार एवं प्रखर तेज के कारण समस्त सुन्दर साथ में इनका सम्मान बढ़ रहा था। बिहा री जी मन से प्रसन्न नहीं थे, वे बार-बार कठोरता दिखाते। मेहराज अपनी कसौटी समझकर सब अन्याय सह रहे थे। वे अपने गुरुदेव श्री निजानंद स्वामी द्वारा सौंपे कार्य को बड़ी दक्षता से निबाह रहे थे। बिहारी जी ने अपनी गुरु-गरिमा का प्रभाव दिखा कर उन्हें पुनः विवाह करने पर बाध्य किया। मेहराज ठाकुर ने दूसरी पत्नी को भी अपने अनुकूल बना लिया। तेज कुँवरि ने प्राणपन से उनके धर्म अभियान को बल दिया।

सुन्दर साथ को एकत्र करके मेला (भंडारा) करने के उद्देश्य से मेहराज ने सामान एकत्र करना आरम्भ कर दिया।[६४] अपने एक दो साथियों को उन्होंने सुन्दर साथ की सेवा में लगा दिया। वस्त्र, आभूषण तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं को एकत्र करने में अपनी सारी पूंजी लगा दी। सुन्दर साथ की सेवा में लगे श्री मेहराज अपने को धन्य मान रहे थे।

पुनीत कार्यों में विघ्न आते ही हैं। फिर परमात्मा भी श्री मेहराज के द्वारा मेला से बड़ा कोई और ही कार्य सम्पन्न करवाना चाहते थे। अभी शायद मेला का अवसर भी न आया था। कार्य कारण ही माना जाय। एक व्यक्ति ने जाम—राजा से शिकायत कर दी कि श्री मेहराज ने सरकारी खजाने का

ग़बन करके अपार सम्पदा जमा कर ली है। तुरन्त जाँच के लिए अधिकारी भेजे गये। सारा सामान संरक्षण में लेकर कर्मचारियों ने श्री मेहराज को उनके भाई सांवलिया और ऊधव जी सहित नजरबन्द कर दिया। उधर अहमदाबाद के सूबेदार कुतुब खां ने जाम नगर पर चढ़ाई कर दी। राजा युद्ध के कारण राज्य से बाहर चले गये। बिना पेशी और सुनवाई के, इस स्थिति में श्री मेहराज को एक वर्ष तक उनके महल के उपगृह में बन्दी रहना पड़ा।

वाणी अवतरण

मेहराज तड़प उठे—'हे प्रियतम, हमने तो सुन्दर साथ की सेवा के लिए एक शुभ कार्य का बीड़ा उठाया था। अपने परिश्रम की कमाई से सेवा कर रहे थे। हमें यह दंड क्यों?'[६५]

मानसिक व्यथा ने परमात्म-विरह का रूप धारण किया। ध्यान एकाग्र और तीव्र हुआ। सद्गुरु देवचन्द्र अपने प्रियतम परमात्मा का आवेश एवं उनकी अर्द्धांगिनी स्यामा की आत्मा सहित इनके हृदय में विराजमान हुए। उनका साक्षात्-कार कर आत्मा आनन्द विभोर हुई। रासमंडल के लीला बिहारी श्याम तथा श्यामा का स्वरूप-वर्णन वाणी में प्रकट हुआ। अमृतमयी जोशभरी 'वाणी' के अवतरण के समय दशों दिशाएं गूंज उठती थीं। कर्णप्रिय, मधुर परन्तु आवेशपूर्ण स्वर ने रानियों की नींद छीन ली।



'हमारे स्वामी ने किसे नजरबन्द किया है?' वे आश्चर्य में पड़ गईं। परस्पर मंत्रणा करके उन्होंने अपने लोगों को भेज कर कुशलमंगल पूछी। श्री मेहराज के ऊपर नियन्त्रण हल्का कर दिया। साथ ही, यह भी आज्ञा दी कि इन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो। किसी भी वस्तु की आवश्यकता पड़े तो उसे तुरन्त दिया जाये। चाकर दौड़े आए। पूछने पर श्री मेहराज के भाई ऊधव जी ने कागज और स्याही की मांग की। वे अब तक उनकी वाणी को दीवारों पर कोयले से लिख रहे थे। कागज पर उसे ज्यों का त्यों उतार लिया गया। वाणी में इस कारागृह को 'प्रबोध पुरी'

और कुरान में 'हब्सा' कहा गया। यहीं श्री रास, प्रकाश और षटऋतु के प्रकरण संग्रहीत हुए। एक चौपाई कलश की भी उतरी। इनको भाषा गुजराती है।[६६]

श्री मेहराज के बड़े भाई—सांवलिया भाई कई वर्ष पूर्व एक बार उनसे झगड़ पड़े थे कि गुरु के लिए तुमने घर-संसार चौपट कर दिया है।[६७] इनके कारण उन्हें जेल जाना पड़ा तो वे और भी रुष्ट हुए थे। लेकिन अमृतमयी मिश्री की-सी मीठी वाणी ने उनका सारा मनो-मालिन्य दूर कर दिया। वे इनके अनुगामी बने।[६८] वाणी का अक्षय-स्रोत फूटा तो जीवन भर बहता ही रहा। पत्थरों के समान कठोर हृदय विरह और प्रेम की आग में पिघल कर मोम बन गए।

कुतुब खां के साथ हुई मुठभेड़ में प्रवासी राजा को लौटने में एक वर्ष व्यतीत हो गया।[६९] राजधानी लौटते ही जाम राजा पर रानियों ने अपना क्षोभ व्यक्त किया। 'एक तो साधकों को कैद कर लिया। दूसरे उनकी खबर तक न ली।'

राजा ने श्री मेहराज से क्षमा मांगी। तीनों भाइयों को सिरोपा पहनाकर ससम्मान विदा किया और जूनागढ़ में नया गांव बसा कर आनन्दपूर्वक रहने का आग्रह भी किया



विक्रमी संवत् १७१५ (ई० सन् १६५८) में मेहराज जूनागढ़ जिले में सोरठ गांव बसाने गए तो वहां दो वर्ष तक रहे। इनके साथियों में कान्ह जी भाई[७०] भी थे, जो वहां के विद्वान पंडित हरजी व्यास के सेवक थे। एक बार पंडित जी बीमार पड़े। बचने की आशा जाती रही। उन्हें मरणासन्न जान भूमि पर लिटाया गया। उनके हाथ से दान कराया जाने लगा तो वे खीझ कर बोले—'पुण्य के लिए किया दान स्वर्ग या यमलोक ले जाता है—मैं इस लोक का नहीं हूँ। मैं तो आह

लिए जाता हूँ कि मुझे, मुझसे बढ़कर, कोई प्रवचनकर्ता न मिला जो मेरे वचनों को काट सकता।' श्री कान्ह जी भाई को उनमें ब्रह्मात्मा के लक्षण दिखाई दिये। उन्होंने दिन-रात अथक सेवा करके उन्हें बचा लिया। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर पं० हरजी व्यास ने कुछ मांगने के लिए कहा तो कान्ह जी भाई ने कहा—'एक महात्मा शहर में हैं उन्हें आप कथा सुनायें।' हरजी व्यास ने कहा—'धन्य हो, एक तो सेवा की—वह भी कथा सुनाने के लिए।'[७१] बड़ी प्रसन्नता से वे श्री मेहराज से चर्चा करने बैठे। एक मास तक मेहराज चुपचाप उनकी कथा सुनते रहे। वह अक्षर ब्रह्म और अखंड अविनाशी परमधाम के विषय में खुल न पाया। हरजी व्यास श्रीमद्भागवत को अपना पूज्य ग्रन्थ मानते थे। मेहराज ठाकुर ने श्रीमद्भागवत के ही कुछ श्लोकों की व्याख्या इस ढंग से की, कि हरजी व्यास की आंखें खुलीं। एक महान आत्मा का साक्षात्कार करके वे गद्‌गद् हुए। अपने सैंकड़ों शिष्यों सहित वे 'सुन्दर साथ' में प्रविष्ट हो गए। १६६३ ई० (वि० सं० १७२०) में मेहराज ठाकुर को पुनः जाम सत्ता ने दीवान-पद संभालने के लिए बुला लिया। कुछ काल बाद गुजरात (अहमदाबाद) के सूबेदार ने चढ़ाई कर दी। सामान्य जन पर होने वाले जघन्य अत्याचारों को देख, राजा, मेहराज ठाकुर सहित उससे सन्धि करने चले गए। प्रदेश की चौथ देने का वचन देकर वापिस लौट आए। जब तक राशि न मिले, सूबेदार ने मेहराज ठाकुर को वंधक के रूप में रख लिया। शर्त थी कि एक वर्ष तक धन जमा न कराया तो दीवान को बन्दूक से उड़ा दिया जायेगा। जाम राजा राशि जमा न करवा पाए।[७२] आपदा की घड़ी में कान्ह जी भाई मेहराज पर अर्पित होने को तुल गए। उन्होंने युक्तिपूर्वक मेहराज ठाकुर को यह कहकर निकल जाने पर विवश किया कि आपका जीवन धर्म के लिए आवश्यक है। धर्म रक्षार्थ चले जाइये। आप बाहर होंगे तो मुझे बचा लेंगे। वे स्वयं उनकी जगह खड़े हो गए। मेहराज का मन राजनीति से इतना खिन्न हो गया कि उन्होंने जागतिक कार्य छोड़कर अपना शेष जीवन केवल सद्‌गुरु द्वारा सौंपे गये ज्ञान-प्रसार एवं 'जन जागरण' (जागनी) के कार्यों में समर्पित कर दिया।

श्री मेहराज का धर्म अभियान

श्री मेहराज ठाकुर ने स्थान-स्थान पर भ्रमण करके मायावी संसार में

मोहित आत्माओं को जाग्रत करके सुपथ पर लाने का बीड़ा उठाया। इसी उद्देश्य से वे दीप बन्दर (दीव) आये।[73] वहां श्री जयराम भाई कंसारा रहते थे। श्री देवचन्द्र जी से वे दीक्षा ले चुके थे। उन्होंने मेहराज की अगुआनी की और कुशल-क्षेम पूछने के बाद उनके का कारण पूछा।

श्री मेहराज ने उनसे कहा—'आपको श्री देवचन्द्र जो ने उद्बोधित किया। तदुपरान्त आपने अन्य कितनी आत्माओं तक उनका संदेश पहुँचाया ? संसार के लोगों की तरह आप भी संग्रह-वृत्ति—परिग्रह को छोड़ न पाये तो सुन्दर साथ और संसारी जीवों में अन्तर ही क्या रहा ? परमधाम की प्रतिज्ञा को याद करो। अब जागनी की बेला आ गई है। मृगतृष्णा के पीछे भाग कर किसने प्यास बुझाई है ? अपने अन्तर के स्रोत को पहचानो और दूसरों को भी उस अमृत का स्वाद देने में सहायक बनो। कब तक कांसा कूटकर बर्तन बनाते रहोगे ? ज्ञान की चोट से मन को कब संवारोगे ?'

मेहराज के वचनों को सुनकर जयराम भाई आत्म-ग्लानिवश रो पड़े। उन्होंने अपनी भूल मानी और स्वामी श्री मेहराज के वचनों पर ध्यान देने लगे।

इनकी प्रभु-चर्चा सुनने दूर-दूर से लोग आने लगे। परमधाम से ब्रज, रास और जागनी के ब्रह्मांड में आत्माओं की रसमयी लीला सुनकर भक्तजन आत्म-विभोर हो उठते थे। उन्हें दिन-रात की सुधि भी न रहती थी। दो वर्ष तक निरन्तर वहां ऐसी अमृत धारा बही कि शुष्क और कठोर हृदय भी प्रेममयी भक्ति-रस में सराबोर हो उठे।[74]

महामति (श्री मेहराज) विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा के कारण अनेक सम्प्रदायों में बंटे लोगों को एकेश्वर अक्षरातीत परमात्मा की शरण में आकर प्रेमामृत स्वरूप अद्वैत रस में डूब जाने का, एक हो जाने का मन्त्र फूंक रहे थे। ब्रज और रास लीला का वर्णन श्रोताओं को साक्षात्कार के समान मुग्ध बना देता था। अपने स्वार्थ के लिए प्रपंच और आडम्बर रचकर धर्म के नाम पर लोगों का शोषण करनेवालों की उन्होंने भर्त्सना की। फलस्वरूप उन्हें तथा-कथित धर्म के ठेकेदारों के कोप का भागी बनना पड़ा। स्वयं वे स्वामी जी से लोहा लेने में असमर्थ थे, परन्तु किसी भी तरह उन्हें वहां से दूर भगाना चाहते थे।

उन दिनों पुर्तगाली लोग भारत में अपना प्रभाव जमा रहे थे। भारत के पश्चिमी तट पर उन्होंने व्यापार फैला रखा था। परन्तु अपने स्वार्थ को सुरक्षित रखने के लिए उन्होंने लोगों में परस्पर विद्वेष फैलाना और प्रलोभन देकर ईसाई धर्म में दीक्षित करना शुरू कर दिया था। उनके युद्ध के नवीन उपकरणों एवं कुटिल चालों से जनता त्रस्त थी। कुछ स्वार्थी लोगों ने एक व्यक्ति को धन का लालच देकर पुर्तगालियों के पास चुगली करने भेजा कि अमुक साधु आपके देवों की निंदा करता है।"[७५] पुर्तगाली अधिकारी तो ऐसे अवसर की तलाश में ही रहते थे। तुरन्त आकर अत्याचार कर सकते थे। परन्तु राह में ही एक बुद्धिमान व्यक्ति उस चुगल को मिला। फिरंगियों की ओर भागते देख उसने इस तत्परता का कारण पूछा। पता लगने पर उन्होंने चुगल को धिक्कारते हुए कहा—'क्या तूने निंदा अपने कानों से सुनी है। व्यर्थ ही थोड़े-से धन के लिए किसी साधु-मंडली को नष्ट करवाने का पाप क्यों सिर लेता है ?' बात ऐसे कही गई कि मन को लग गई। वह चुगल वहां से भाग गया। श्री मेहराज ठाकुर का ज्ञान प्रकाश और प्रखर हो भूले-भटकों को राह दिखाने लगा।

स्वामी जी कहीं भी अधिक दिन ठहरते नहीं थे। उन्हें तो विश्व भर में भ्रमित आत्माओं को जाग्रत करना था। यहां उनको आये दो वर्ष हो गये। यहां से निकलने का करण एक उपद्रव बना।

उन दिनों अरबी डाकू भारत के सीमांत प्रदेशों में खूब लूट-मार करते थे। मनमाना धन न मिला तो लोगों को (पुरुष, स्त्रियों और बच्चों तक को) उठा कर ले जाते थे। उन्हें केवल धन का मोह होता था। जिन लोगों को वे उठा ले जाते, उन्हे बन्धक समझ अच्छी प्रकार रखते थे। यह एक विशेष बात थी। तो भी जब तक मुँह मांगा धन प्राप्त न हो जाता, उनको वे छोड़ते न थे।

स्वामी जी की धर्मपत्नी उनके शिष्यों सहित इन लुटेरों की लूट खेप में आ गयीं।[७६] इस अवसर पर इनको बन्धक से छुड़ाने के बहाने इस अन्याय को सदा के लिए बन्द कराने के लिए स्वामीजी ने नबीपुर पाटन, कच्छ मंडई बन्दर, भोज-नगर आदि समुद्र तटवर्ती स्थानों की यात्रा की। स्थान-स्थान पर नये साथी जाग्रत और एकत्रित हो रहे थे। परन्तु बन्धक में गए लोगों का पता न चला। एक-दो दिन प्रत्येक स्थान पर उनका संधान करते हुए वे नलिया आये और

वहां से ठट्ठा नगर पहुँचे । पन्द्रह दिन वहां रह कर लाठी बन्दर चले आये ।

साथियों की खोज में व्यस्त रहते हुए जहां-जहां श्री मेहराज ठाकुर गए इनकी चर्चा का ऐसा दौर चलता कि सैंकड़ों-हजारों की संख्या में लोग जुट आते थे । इनके ओजस्वी वचन जादू का-सा असर करते थे । लोग अपने कुविचारों एवं दुष्कर्मों से मुक्त हुए ।

वहां से, अरब देशों की यात्रा के लिए जल पोत पर बैठे तो सत्रह दिन तक ऐसा भयंकर तूफान चला कि स्वामी जी को ठट्ठा लौट आना पड़ा । यहां आकर पता चला कि बन्धक रखने वालों से किसी की मुलाकात हुई है । कुछ लोगों ने स्वयं ही आगे आकर उन्हें छुड़ा लाने की सेवा मांगी, परन्तु स्वामी जी ने कहा 'ऐसा प्रतीत होता है कि वहां जाने की मेरी यह योजना परमात्मा की ओर से बनाई गई है । हमें स्वयं जाना ही होगा । यह सब योजनाएँ किसी कारणवश ही बन ही रही है ।' परमात्मा पर दृढ़ आस्था रखने वाले भक्त जन प्रत्येक कार्य के पीछे विश्व-नियन्ता की आज्ञा देखते हुए उसे अपने लिए शुभ ही मानते हैं ।

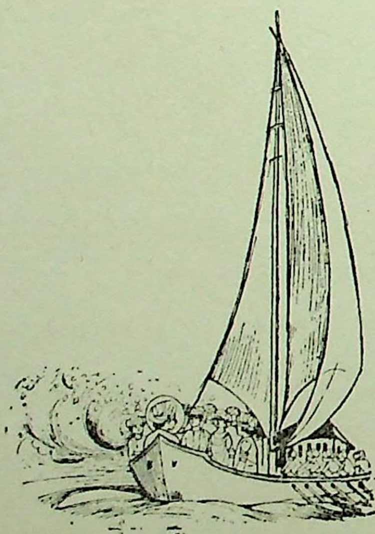
इधर ठट्ठा में, स्वामी जी की परमात्म-चर्चा की बहुत धाक जमी । चिन्तामण भाई कबीरपंथी विद्वान थे ।[७७] हजारों की संख्या में लोग उनके शिष्य थे । कई साधुओं ने उनकी चर्चा सुनी थी । लोगों ने स्वामी जी से कहा—'एक दिन आप उनकी चर्चा सुन आइये ।' स्वामी जी सहर्ष चले गए । चिन्तामण भाई से उन्होंने कबीर के वचनों पर ही चर्चा शुरू की । लेकिन कबीर की एक साखी पर वह स्वयं ही अटक गये । स्वामी जी से उसके गूढ़ार्थ सुनकर पूरी मण्डली सहित चिन्तामण भाई इनके साथी बन गये । दीक्षा देने के लिए महा-मति इन बातों का पूर्व-संकल्प ले लेने को कहते थे कि[७८] पेट के लिए जीव-हत्या (मांस), नशीली वस्तुओं (मदिरा और तम्बाकू) का सेवन, परस्त्री-गमन, चोरी और झूठ से दूर रहेंगे । यह सब बातें ही मनुष्य के आत्मिक उत्थान में बाधक बनती हैं । सत्य-पथ पर चलने वालों को इनसे परहेज करना ही पड़ेगा ।

चतुरदास, पोहकरण स्वामी जी के लिए नित्य दूध लाते थे । दूध रखकर चर्चा सुनने बैठ जाते थे । स्वामी जी के प्रवचनों में वे श्री कृष्ण की ब्रज और रास-लीला वर्णन बड़ी तन्मयता से श्रवण करते । ठट्ठा में ही निन्यानवे जल-पोतों के स्वामी लक्ष्मण सेठ नाम के एक महान विद्वान अपनी बखार में

श्रीमद्भागवत की कथा कहते थे। चतुरदास ने उनकी कथा सुन रखी थी। एक दिन वहां कथा में जाकर उन्होंने प्रश्न किया—'ब्रज और रास अखंड कहो जाती है। इस संसार की कोई वस्तु अविनाशी नहीं। इस संसार का ब्रजमंडल तो महाप्रलय में नष्ट होगा तो वह अखंड ब्रज रास कहां हैं ?' एक साधारण ग्वाले के मुख से तत्त्व की बातें सुनकर लक्ष्मण सेठ चौंके। 'तुमने यह बात कहां से सुनी ?' तब चतुरदास ने श्री मेहराज का सारा वृत्तान्त सुनाया।

स्वामी जी का स्थान पूछकर लक्ष्मण सेठ वहां पहुँचे। उनकी चर्चा से मन प्रभावित हुआ। सारा कार्य-व्यवहार अपने बच्चों को सौंप कर उनकी शरण पकड़ी तो आजीवन सेवक भाव से छायावत उनके साथ चलते रहे। लक्ष्मण सेठ ही बाद में लालदास के नाम से विख्यात हुए। परन्तु उन्होंने तो अपना कोई भी नाम, अपना न रखा। महामति में मिल कर महामति हो गए। महामति की दैनन्दिनी के रूप में उन्होंने 'बीतक' लिखी। महामति की प्रामाणिक जीवनी के अतिरिक्त उनके और भी अनेक ग्रंथ हैं।

ठट्ठा नगर से स्वामी जी लाठी बन्दर गए। वहां से जलपोत पर सवार हो अरब के तट पर मस्कत बन्दर पहुँचे।[७९] किनारे पर महाव जी की दुकान में बैठ गए। उन्होंने घर ले जाकर खूब आवभगत की। वहाँ भी चर्चा का ऐसा दौर चला कि उस प्रवाह में बहने वालों के समस्त दुःख और कलमष धुल गए। आत्माएँ निर्मल होकर परमधाम का-सा आनन्द अनुभव करने लगीं।



बन्धक में रखे लोगों के बदले धनराशि के लिए एक दरोगा नित्य पुकार करने आता था। लेकिन वहां आकर कथा सुनने में इतना मग्न हो जाता कि सारा तगादा भूल जाता। जाते हुए जोर से कहा जाता, 'कल फिर आऊंगा। राशि तैयार रखना, तुम्हें अरब सरदारों का डर नहीं लगता।'

स्वामी जी का सदैव यही उत्तर रहता—'हमारे सरदार (परमात्मा) खबरदार हैं। वह सामर्थ्यवान स्वामी हैं, हमें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।

इनका विश्वास और चर्चा सुन कर वह ठगा-सा रह जाता और परवरदिगार का शुक्र मनाता कि उसने उसे ऐसी चर्चा सुनने का अवसर दिया।

वहीं भैरों सेठ ने सत्तर हजार लाहारी (लीरा) देकर स्वामी जी के साथियों को छुड़ाया। इनके कथा प्रवचन की इतनी धूम मची कि जिज्ञासावश कुछ अरब डाकू वेष बदल कर आने लगे। इनके ज्ञानपूर्ण वचनों ने उनके मन निर्मल कर दिए। इस घटना के बाद से धन के लिए लोगों को उठाने की प्रथा बन्द हुई। कई वर्ष तक डाकू भारत की ओर न आए।

स्वामी जी ने भैरों सेठ के सेवा कार्य को सराहते हुए कहा—'तुम्हारे पास धन है। परमात्मा की अनुकम्पा से तुम उसे शुभ कार्यों में लगा रहे हो, इस बात से हमें प्रसन्नता हुई है। तुमने हमारे साथियों के लिए अपना धन और समय दिया। बदले में हमारे पास जो अध्यात्म-निधि है, चाहो तो उसे ले सकते हो।'

आचार-विचार की शुद्धता

भैरों ठाकुर मर्माहित हुए। वे जानते थे कि वे एक व्यसनी व्यक्ति हैं। शराब, मांस, दुराचार, जुआ—सब उनके लिए मंगलाचरण था। कोई भी साधु उन्हें निकट न फटकने देता। स्वामी जी के शब्दों को सुन रो उठा—'मुझ से पापी को आप कैसे, क्या देंगे ? कुपात्र में सत् वस्तु कैसे रह पायेगी ?'

स्वामी जी ने बात बनती देखी—'कुपात्र कोई नहीं। आपका प्रायश्चित ही मन को शुद्ध करने के लिए पर्याप्त है। आप हमारी बात मानकर एक महीने तक शुद्ध आचार-विचार में रह कर चर्चा सुनिए। यदि आपको सत्य वस्तु की प्राप्ति न हो तो फिर से अपने पूर्ववत् आचरण को अपना सकते हैं।'

भैरों सेठ भी ठाकुर थे। उन्होंने इस चुनौती को स्वीकार किया। सामने हुक्का रखा था। उसे पटक कर फोड़ दिया। रसोई में शुद्ध शाकाहारी भोजन का प्रबन्ध करने की आज्ञा दी। नशीली वस्तुओं का प्रयोग बन्द कर दिया।

घर के लोग आपत्ति करने लगे 'यही वस्तुएँ तो इनका जीवन है। यह कैसे साधु आए जो इनके प्राण ही हर लेना चाहते हैं ?'

भैरों ठाकुर ने उन स्वार्थ के लिए हितैषी बनने वालों से कहा, 'मैंने कोई जीवन भर के लिए थोड़े ही छोड़ दिया है। एक महीने की ही तो बात है।'

घर के लोग मन मार कर बैठे रहे। तीसरे ही दिन चर्चा में बैठे गहन चिन्तन में मग्न भैरों सेठ के मन की ग्रंथि खुल गई। प्रसन्नता में वे नाच उठे। मुझे मनचाही वस्तु मिल गई। अब मैं शपथपूर्वक जीवन भर के लिए कुवृत्तियों का त्याग कर दूंगा।

भैरों सेठ के तनिक उपकार पर महामति ने उसे सुमति प्रदान की। संसार में अपने शुभ कर्मों के फलस्वरूप शोभा-सम्पत्ति पा ही चुका था। अब परलोक की पूंजी से भी धनी बना। भैरों ठाकुर ने प्राणपन से सुन्दर साथ की सेवा की। दूर-दूर से हजारों की संख्या में लोग प्रवचन सुनने के लिए जुटने लगे। दिन-रात कहां और कैसे बीत रहे थे, किसी को खबर कहां थी?

अब्बासी बन्दर से महाप्रभु कोग बन्दर आए।[८१] वहां से जलपोत पर सवार होकर लाठी बन्दर होते हुए ठट्ठा लौट आए। इनके आगमन की बात सुनकर लोगों में हर्ष की लहर कौंध गई। दिन-रात प्रीति-भोज, सम्मेलन और उत्सव होने लगे। यहां से स्वामी जी ने बिहारी जी को पत्र द्वारा इन बन्दर-गाहों में अपने प्रचार अभियान एवं सुन्दर साथ के जागरण की सूचना भेजी।

स्वामी जी का विचार था कि सबको आत्म-प्रकाश मिले। जिसका दीया जल जाए वह दूसरों के दीये जला सकता है। दीक्षा देना (कन्वर्शन) उनके विचार में केवल कान में मन्त्र फूंकना नहीं था। एक सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय में 'धर्मान्तरण' मात्र नहीं, निजानन्द में प्रवेश था। उनकी जागनी तो जड़ से चेतन में प्रवेश कराने वाली थी। ऐसी कि जड़ चेतन का स्पर्श करे तो वह भी चेतन हो जाय। मर्त्य अमर्त्य बने। जैसे भ्रमरी के संग से कीड़े के भी पंख उग जाते हैं। व्यक्ति अपनी सतही चाल को छोड़कर उच्च आत्मिक उड़ान भरे। जाग्रदात्मा का कर्तव्य है कि वह मोहनिद्रा में पड़े जीवों का भ्रम निवारण करे। नाम मात्र के लिए अथवा किसी भी लालच से धर्म परिवर्तन उनकी दृष्टि में धर्म के साथ खिलवाड़ मात्र था। स्वामी जी अपने योग्य साथियों को विभिन्न प्रदेशों में नवजागरण (जागनी) का संदेश देने भेज रहे थे।

स्वामी जी मंडई बन्दर आ गए।[८३] वहां से नाव पर बैठकर सूरत जाने के लिए तैयार हुए। सब लोग बैठ गए। तेज हवा में नाव खुल गई। स्वामी जी बैठ न पाए। यह एक तरह से अच्छा ही हुआ। वहां का एक अधिकारी स्वामी जी की टोह में था, उन्हें पा जाता तो बहुत कष्ट देता। नाव के लोगों को

सूरत बन्दरगाह में उतरते ही राज्य कर्मचारी पकड़ कर ले गए। मेहराज ठाकुर उनमें नहीं, यह सुन कर वे निराश हुए। उनकी धर्मपत्नी को पकड़ ले जाने की उनकी कुवृत्ति को भांप कर वहां के ब्राह्मण 'सुन्दर साथ' ने उन्हें अपनी बहन बताया। सैनिकों ने कहा हम कैसे विश्वास करें कि ये आपकी बहन हैं। आदेश हुआ—'इनके हाथ का पका भोजन खाइये, तब इन्हें छोड़ा जा सकता है।' उस युग में छुआछूत और जाति-पांति की कुटेव आज से भी अधिक भयंकर थी। स्वामी जी के सुन्दर साथ में उस दिन से जातिवाद की प्रथा समाप्त हो गई। सबने एक पंक्ति में बैठकर बाई जी राज के हाथ से भोजन किया। आज तक सूरत को बाई जी का पीहर माना जाता है। वहां उनका मन्दिर भी है। वहां के पुजारी सबको यह कथा सुनाते हैं।

स्वामी जी जल मार्ग छोड़ स्थल मार्ग से सूरत आ गए।" नाव वाले साथी मिल कर बड़े प्रसन्न हुए। सतरह महीने तक स्वामी जी सूरत रहे। भीम जी, स्याम जी भट्ट वहां के धुंआधार विद्वान थे। शास्त्र वेदान्त में उनके सम्मुख कोई टिक न पाता था। स्वामी जी से चर्चा करके उनका अभिमान जाता रहा। वहां तो सर्वदेशी, सर्वधर्मों की चर्चा होती थी। जिस सम्प्रदाय को मानने वाला आता वह उनके वचनों में अपने धर्म का शुद्ध और सत् स्वरूप पा जाता। प्रकांड विद्वान अपना अहंकार त्याग संग हो लिए। जिन्होंने स्वामी जी के 'महामति' स्वरूप को पहचान लिया वे फिर अलग न हो सके। उनके रंग में रंग कर 'महामति' हुए।

श्री मेहराज का गुरुपुत्र से मतभेद

श्री मेहराज ठाकुर की सार्वभौम क्रांतिकारी धर्म नीति के साथ चलने में बिहारी जी अक्षम थे। उस पर रोक लगाने की इच्छा से उन्होंने पत्र लिखा कि हम तीन नियम लागू करना चाहते हैं:—

१. पहला—नीची जाति को मन्त्र न दिया जाय।
२. दूसरा—विधवा स्त्री को सुन्दरसाथ में प्रवेश न मिले।
३. तीसरा—हमारे तुम्हारे सिवा कोई तीसरा मन्त्र न दे।

स्वामी जी इन वचनों को कदापि स्वीकार न कर सकते थे।" उन्होंने उत्तर दिया—'आत्मा की परख विवेक और मन की परख गुण और मन की पवित्रता से की जाती है—वर्ण, जाति, सम्प्रदाय और वर्ग से नहीं। दूसरे, स्त्री

विधवा हुई तो परिवार, व्यवस्था और समाज उसे तिरस्कृत करते हैं। धर्म में भी प्रवेश न मिला तो वह कहां जायेगी ? इस पर उन्होंने लिखा:—

'जो कोई लूला पिंगला साथ ,
इन्द्रावतो न छोड़े तिनको, पहुँचावे पकड़ हाथ ।'

आप भी देह-बुद्धि को छाड़ आत्मदृष्टि से लोगों को परखिए ।

यह अलौकिक ज्ञान-ज्योति सम्पूर्ण ब्रह्मांड में फैलाने की आवश्यकता है । हम और आप कहां तक पहुँच पाएँगे ?'

बिहारी जी ने इस अभ्युक्ति को अपना अपमान समझा । वे आपे से बाहर हो गए । स्वामी जी को भी उन्होंने समाज से निकाल बाहर करने की धमकी दी और आदेश दिया—'अब पत्र-व्यवहार करने की भी आवश्यकता नहीं ।' धर्म और परमात्मा से अधिक अपनी मान्यता चाहने वाले तथा मानव में अलगाव की प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने वाले व्यक्ति ही धर्म का रूप विकृत करते हैं । ऐसे ही तथाकथित गुरुओं के कारण लोगों को धर्म के प्रति वितृष्णा हो जाती है । महामति का अर्थ महान् बुद्धि है—जो द्वैत मिटाकर अद्वैत में प्रवेश दिलाये । आसुरी बुद्धि को दूर करे । एक धर्म मत, एक ही परमात्मा की भक्ति सिखाए । वेद-कतेब दोनों को संग लेकर चले । ऐसे 'महामति' ही सच्चे गुरु हैं ।

बिहारीजी के पत्र को पाकर स्वामी जी क्षुब्ध हुए । किन्तु सूरत में एकत्रित सुन्दर साथ ने उन्हें बिहारी जी की बात की परवाह न करते हुए भी सत्य पथ पर चलने की सलाह दी । उनके आग्रह पर स्वामी जी ने वापिस पत्र लिखा कि आपने भले हमको दूर किया । आज से हम स्वयं जन-जागरण का कार्य अपने सिर ले रहे हैं । यदि हम स्वार्थ के लिए क्षुद्र कार्य करेंगे तो हमारा संकल्प कभी पूर्ण नहीं होगा । प्रभु का कार्य उनकी कृपा पर चलता है, हमारे आपके बल पर नहीं ।

यहां से श्री मेहराज को सुन्दर साथ ने 'प्राणनाथ' सम्बोधन दिया । निजानंद स्वामी देवचन्द्र जी के 'प्राणनाथ परमात्मा श्री कृष्ण थे ।' मेहराज ने श्री देवचन्द्र जी को प्राणनाथ कहा । प्रियतम परमात्मा और सद्गुरु का प्रकाश अब श्री मेहराज में प्रत्यक्ष देखकर सुन्दर साथ ने इन्हें 'प्राणनाथ' कहा । प्राणनाथ ने परमात्मा की महान बुद्धि से प्रेरित प्रकाशित वाणी के प्रत्येक प्रसंग को 'महामति' के नाम से समाप्त किया गया । श्री मेहराज 'इन्द्रावती' में और

'इन्द्रावती' महामति में लीन हो गई। बूंद जब सागर में अपनी अस्मिता खो देती है तो सागर ही कही जाती है। इस प्रकार मेहराज ठाकुर 'महामति प्राणनाथ' के नाम से विख्यात हुए।

महामति प्राणनाथ बहुत दिन सूरत में रहे।[८६] वहां से सीदपुर पाटन पहुँचे। बाईस दिन वहां रहे। भगवान रेवादास नामक एक 'पंडा' तीर्थ-गुरु बन कर दक्षिणा लेने आये। महामति ने उन्हें एक मोहर भेंट में दी। तो भी उनका लोभ कम न हुआ। उनका लालच बढ़ता देखकर गोवर्धन भट्ट ने कहा 'मूर्ख ! इनके स्वरूप को पहचान कर आत्मा जगा लो—क्या कौड़ियां बटोर रहे हो ?' तब भगवान रेवादास चरणों में गिर पड़े। वहां से स्वामी जी ने चलते-चलते दो-चार शब्द कहे—'संसार का मोह छोड़ दो। परम-धाम, वहां की यमुना, पाट घाट आदि को याद करो। विचार करो यहां क्यों आए हो ? ब्रज और रास में प्रियतम कृष्ण के संग कौन थे ? अब पुनः इसी ब्रह्मांड में जागकर अखंड सुख पाना है एवं परमधाम लौटना है।



रेवादास ने जो कुछ सुना मान लिया। कुछ बातें उसको बुद्धि के बाहर थीं। छः मास तक दिल में रखी इन बातों को उसने केशब भट्ट के सामने खोला। कहा कि 'एक खतरी (क्षत्रिय) ने

एक मोहर भी दी और यह शब्द सुनाए। केशव भट्ट का माथा ठनका। आत्मा पुकार उठी। 'वह खतरी नहीं था, मूढ़! स्वयं परमात्मा का अवतार था।' 'अब उन्हें कहां पाऊँ। उन्हें कहां खोजू ? यही पुकारता वह पैदल ही पैदल चल पड़ा।

स्वामी जी इन दिनों दिल्ली पहुँच चुके थे। उनके साथ एक भारी जन समुदाय चलता था। जहां जहां भी वे गए लोगों में उनकी चर्चा होती थी। केशव भट्ट उनका पीछा करते हुए दिल्ली तक चले आए। वहां जो उनके चरणों की शरण मिली, वाणी सुनी, तो मानो बिक ही गए। सिद्धपुर लौट कर उन्होंने भगवान रेवादास को ज्ञान दिया। एक और केशवदास को उन्होंने तारतम मन्त्र दिया तो वे भी श्री प्राणनाथ की शरण में आए। उन्होंने श्री प्राणनाथ जी की समस्त 'वाणी' का संकलन-सम्पादन उनके जीवनकाल में ही कर लिया था। उनके चोला छोड़ने के उपरान्त व्यक्ति पूजा को बढ़ावा न देने के उद्देश्य से उन्होंने 'कुलजम सरूप' को पन्ना (मध्य प्रदेश) में ही गद्दी पर प्रतिष्ठित किया।जहां आज विशाल 'प्राणनाथ मन्दिर' है।

महामति प्राणनाथ के चौदह ग्रंथों एवं अठारह हजार चौपाइयों का संकलन कुलजम स्वरूप एक ऐसा पुण्य धर्म-ग्रंथ है, जो उनके मुख से उच्चारित होते हो लिपिबद्ध किया गया। यह इसकी सबसे बड़ी प्रामाणिकता है। परमात्मा के आवेश से आजीवन श्री मुखवाणी अवतरित होती रही। सुन्दर साथ उन्हें तत्काल उतार लेते थे। प्रत्येक धर्म के गूढ़ रहस्यों को खोलते हुए महामति के प्रवचनों का तत्कालीन जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ता था। उस युग का इतिहास एवं युग-युग की समस्याओं का निराकरण भी वाणी से लक्षित होता है।

महामति ने अनेक प्रचलित भाषाओं के द्वारा अमृतमय वचनों में परमात्मा का संदेश दिया जिसमें अद्वैत सिद्धान्त का रस और सार है।

महामति प्राणनाथ 'जागनी' का उद्घोष करके ब्रह्मात्माओं को बोध देते हर जगह घूम रहे थे।" देवी-देवताओं की पूजा, कर्मकांड और शरात्र का ज्ञान रात्रि में चाँद-सितारों की तरह मार्ग-दर्शन करते हुए मानव को भटकने से बचाते रहे। धर्म का सत्य स्वरूप उषा काल के सूर्य की तरह प्रकट हुआ तो चांद सितारे भी अपने प्रकाश को समेट कर उसमें विलीन हो गए। उन्होंने बताया—'नाना मतों और गुटों में बंटे भक्तजन जागो—समय को पहचानो।

एक होकर एक प्रभु की वन्दना करो। समय आया है—जब जातिगत अभिमान को छोड़कर सारी मानवता एक हो जायेगी। जाति, वर्ण, वर्ग और सम्प्रदाय के झगड़े समाप्त होंगे। एक परमात्मा की छत्र-छाया में सबका खान-पान, कथन, रहन-सहन एक हो जायेगा। संसार के समस्त आस्तिक जन एक झंडे तले आ जाएं तो संसार में नास्तिकता और पशुवृत्तियों का दमन संभव है।

यहाँ से सिद्धपुर-पाटन आदि स्थानों पर होते हुए प्राणनाथ जी राजस्थान में मेरता पहुँचे। " स्थान-स्थान पर प्रसंगानुसार वाणी का अवतरण हो रहा था। जिसे उनके प्रवीण शिष्य लिखते जा रहे थे। रास की कुछ रामतें मेरता में लिपिबद्ध की गयीं। मेरता में सेठ झांझन भाई तथा श्री राजाराम भाई ने श्री प्राणनाथ की अनुपम सेवा की। वे वहां से लेकर पन्ना तक उनके खर्च की व्यवस्था करते रहे। मेरता के बाग में बैठकर स्वामी जी परमधाम की चर्चा किया करते थे। हजारों की संख्या में लोग उनके दर्शन के लिए आने लगे।

इस क्षेत्र में, एक जैन तांत्रिक लाभानन्द यति ने लोगों को बहुत भ्रमित



ग्रौर ग्रातंकित कर रखा था। लोग उसकी सिद्धियों से त्रस्त थे। इनकी कथा से लोग जाग्रत होने लगे तो उसकी धाँधली न चल सकी। अपनी तांत्रिक विद्या के बल से उसने प्रयास किया कि श्री प्राणनाथ जी को पहाड़ के नीचे दबा कर मार डालूँ। पहाड़ तो भला क्या उठता। उल्टे अपने मंत्रों के दुष्प्रभाव से वह स्वयं पागल हो कर 'मार डालो, काट डालो' कहता हुग्रा जंगल में भाग गया। जहां स्वयं परमात्मा की शक्ति विराजमान हो, वहाँ मन्त्र-तन्त्र भला क्या करते ? हजारों की संख्या में नर-नारी वहाँ दीक्षित हुए।

बादशाह ग्रौरंगजेब के प्रसिद्ध सेनापति राजा जसवंत सिंह उन दिनों काबुल युद्ध के लिए भेज दिये गये थे।[८] उनका एक ग्रन्थ स्वामी जी ने देखा तो उन्हें सुपात्र जानकर संदेश देने की बात इनके मन में ग्राई। राजनीति की क्रूर चाल में जसवंत सिंह भारी मुहिम पर भेज दिये गए थे। स्वामी जी उन्हें लौटाना चाहते थे। अपने एक साथी गोवर्धन भट्ट के हाथ उन्होंने उन्हें पत्र भेजा जिसमें ग्रात्मबोध दिया ग्रौर साथ ही लौट ग्राने का संकेत भी। जसवन्त सिंह ने पत्र पढ़ा तो बहुत प्रभावित हुए पर वापस लौटना उनके लिए असम्भव था। स्वामी जी ने दूसरा पत्र भी दिया, परन्तु उसके पहले ही वह चल बसे।

विभिन्न धर्मों का अवबोध

मेरता में ही, एक दिन सायंकाल भ्रमण को जा रहे थे तो मस्जिद के मुल्ला ने ग्रजान दी[९] —'ला इलाह इल्लिल्लाह मुहम्मदुर्रसुलुल्लाह'। साधारणतया मुसलमान इसका ग्रर्थ लगाते हैं—'नहीं है पूज्य जिसके सिवा उस खुदा के रसूल मुहम्मद हैं।' श्री प्राणनाथ ने इस कलमा की पुकार में छिपे रहस्य को पा लिया। उन्होंने कहा 'कलमां का ग्रभिप्रेत ग्रर्थ बड़े महत्त्व का है। रसूल साहब ने हमारे ही लिए मुल्ला को मुनारे पर चढ़ कर ग्रजान कहने को खड़ा किया है। मानो जगह-जगह ढिंढोरा फिराकर इस बात को याद दिलाते रहे हों कि 'ला' नहीं (क्षर ब्रह्मांड) 'इला' है (ग्रक्षर, ग्रविनाशी सत्ता) से पार इल्लुल्लाह (ग्रक्षरातीत परमात्मा) का पैगाम मुहम्मद लाए हैं। गीता की घोषणा—'सर्वभूत क्षर हैं, उनसे ऊपर कूटस्थ ग्रक्षर ब्रह्म की सत्ता है। उनसे भी ग्रन्य (विशेषतम) उत्तम पुरुष हैं' ग्रौर कलमा में साम्यता के सूत्र में पकड़ में ग्राने लगे। तारतम मन्त्र के ग्रालोक में निजनाम मन्त्र में 'ग्रनादि ग्रक्षरातीत, श्री कृष्ण' गीता के उत्तम पुरुष ग्रौर कलमा के 'एक ग्रल्लाह' में तारतम्य

देखकर उन्हें इतना आनन्द हुआ जिसका वर्णन नहीं हो सकता। उस समय उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो मुहम्मद साहब ने स्वयं उनमें प्रवेश करके इस कलमा के द्वारा सारे कुरान, कतेब ग्रंथों का ही नहीं, सारे धर्मग्रन्थों के अर्थों में तादात्म्य दिखा दिया है। अब तक श्री देवचन्द्र जी द्वारा प्रदत्त वेद ज्ञान को लेकर स्वामी जी हिन्दू जनों को एक सूत्र में बांधने का उपाय कर रहे थे—अब कतेब ग्रन्थों के दूसरे महत्त्वपूर्ण पक्ष को ग्रहण कर धार्मिक ऐक्य और सद्भाव का अलख जगाने लगे।

धर्म के नाम पर कुछ एक ऐसी रीतियाँ चल पड़ी हैं या नियम बना दिये गए हैं, जो धार्मिक एकता की राह में कठिनाई उत्पन्न कर देते हैं। जैसे सूर्योदय पूर्व में होता है तो हिन्दू पूर्व की ओर नमन करते और अर्घ्य चढ़ाते हैं। काबा पश्चिम की ओर है तो मुस्लिम पश्चिम की ओर सिज्दा करते हैं।



महामति ने पूछा—खुदा किस ओर है" ? वह सर्वव्यापी हर दिशा में है। उसका घर तो पवित्र मन ही है। अपने मन में उसे बिठाकर नमन या सिज्दा करो। बहुदेव पूजा करने वालों को उन्होंने एक ही परमेश्वर की पूजा करना सिखाया। किसी भी बाह्य उपकरण या मूर्ति आदि की नहीं अपने जाग्रत मन में परमात्मा के चेतन स्वरूप की पूजा ही सच्ची पूजा है। वही आत्मा को जगाती है। उसी प्रकार उन्होंने मुसलमानों से भी कहा 'अपने दिल को काबा (अर्श) बनाओ। उसमें खुदा को बिठाकर उनके चरणों को बोसा दो।

बकरे आदि पशुओं की बलि चढ़ाने वालों को उन्होंने सुझाया कि अपने अहंकार की, मैं पन की, पशुवृत्तियों को कुर्बानी देना ही ईश्वर को प्रसन्न कर सकता है। अपनी सद्वृतियों को खुदा के अर्पण करना गोकुशी—गाय की बलि है। हम समझते हैं शैतान बाहर है और हमारा घर—संसार ही माया है, जो हमें परमात्मा की राह से रोकता है। ध्यान से देखो तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि हमारा मन ही शैतान का रूप धरे हैं, जो सांसारिक वृत्तियों की ओर हमें ले भागता है। घर संसार प्रभु नामस्मरण के आड़े कैसे आ सकते हैं ? मन रूपी दज्जाल और पाशविक वृत्तियों से युद्ध करना—उनको सीधी राह पर लगाना ही जिहाद है। किसी का खून करना, यहां तक कि खूनी की सोहबत करना भी कुरान में वर्जित है।

दान करने वालो ! परमात्मा के सिवा कुछ न रखो। सब उसको राह में कुर्बान कर दो। दूसरों को दु:ख देना, पेट के लिए हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, दूसरों की नजर बचाकर अपराध करना परमात्मा से विमुख करता है। क्योंकि उससे कोई बात छिप नहीं सकती। नशीली वस्तुओं का सेवन मानव को सुलाता है। विवेकहीन बनाता है। परमात्मा को तुम्हारा सतर्क रहना ही पसन्द है। अपने मन को पवित्र मन्दिर बनाकर परमधाम का ध्यान करना ही साधना है।

जीवन भर प्राणों की बाज़ी लगा कर भी सत्य बोलो, दया, दान पूजा दिखावे नाम या बड़प्पन के लिए नहीं गुप्त रूप से अपनी आत्मा को जगाने के लिए करो। कर्मों के बंधन से मुक्त होने के लिए निष्काम कर्म और प्रियतम से प्रेमपूर्वक रमण करना ही सच्चा तीर्थ है।

'मूर्तिपूजा, पांच तत्वों की उपासना एवं अनेक देवी-देवताओं की आराधना करने के कारण गुटों में बँटे लोगों को महामति ने एकेश्वर की शरण में आकर अद्‌वैत भाव में स्थित होने का आग्रह किया। 'बार बार स्नान शरीर के लिए भले उपयोगी हो, मन की शुद्धि के लिए उसका उपयोग नहीं है। मन पवित्र होता है परमात्मा में एकाग्र होने से और विवेक से आत्म शक्ति प्राप्त होती है। छुआछूत, जाति-पांति, वर्ण वर्ग भेद के कारण मनुष्य को हीन माननेवाले मानवताविहीन प्राणी हैं। उनमें तनिक भी विवेक नहीं। मनुष्य को उसकी जाति, वर्ण से नहीं, मन की पवित्रता और रहनी से परखना सीखो।'

एक ओर महामति ने हिन्दू धर्म ग्रन्थों में प्रतिष्ठित और व्यापक एकेश्वर-वाद को बढ़ावा दिया। दूसरी ओर कुर्बानी और जिहाद का सही रूप दिखा-कर, उन्होंने हिन्दू मुसलमानों के बीच सदियों से चले आ रहे भेदभाव को दूर करने का अचूक मंत्र दिया।

श्री देवचन्द्र जी ने हिन्दू धर्म ग्रंथों का सार बताकर उन्हें आधार एवं साक्षी मान कर सर्वेश्वर उत्तम पुरुष परमात्मा की उपासना का मंत्र दिया था। सृष्टि रचना आत्मा परमात्मा संबंधी प्रश्नों का समाधान वे वेद शास्त्र, पुरान आदि ग्रन्थों के आधार पर करते थे। महामति प्राणनाथ ने अंजील (बाइबिल), ज़बूर, तोरेत (मूसा या यहूदी सम्प्रदाय के ग्रंथ) कुरान (मुहम्मद साहब प्रदत्त इस्लाम धर्म ग्रंथ) को भी साथ में लेकर एक विश्व धर्म की स्थापना की। सभी अवतारी पुरुषों तथा सात कलमे वाले पैगम्बरों को उन्होंने अपने अंदर देखा[१२]। उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म ग्रंथों की सही व्याख्या की। वेद के सारगर्भित वचनों और कतेब ग्रंथ की मान्यताओं का शुद्ध रूप दिखाकर उन्होंने दोनों को समकक्ष खड़ा कर दिखाया। परम्परागत मिथकों एवं मान्य-ताओं, देवी-देवताओं और फरिश्तों में साम्यता दिखाते हुए उन्होंने उस सत्य सनातन धर्म—दूसरे शब्दों में 'हकीकी दीन इस्लाम' का मार्ग प्रशस्त किया। जिसे धारण कर मनुष्य परमात्मा को समर्पित हो जाये।

विभिन्न मिथकों में समानता

बाइबिल कुरान में आदम, हव्वा और सृष्टि रचना के मिथकों तथा श्री देवचन्द्र जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में समानता बताई।[१३] महामति का यह

कहना है कि धर्म ग्रंथों के किस्से-कहानियां इतिहास नहीं हैं। वे आत्मा परमात्मा तथा उसकी लीलाओं का सांकेतिक शब्दों में वर्णन है। जब तक उन कहानियों का अभिप्रेत अर्थ न लिया जायगा तब तक धर्म को सही रूप में समझा नहीं जा सकता।

उदाहरण के लिए बाइबिल कुरान में कथा आती है कि खुदा ने आदम का पुतला बनाकर उसमें अपनी रुह फूँकी और वह बहिश्त का वासी बना। आदम को बहिश्त में सेव, गेहूँ अथवा ज्ञान और दुःख का फल खाने से मना किया। जब उसने आज्ञा का उल्लंघन किया तो उसे बहिश्त से निष्कासन मिला। आदम का यही अनादि पाप है जिसका फल आज भी उसकी सन्तान पा रही है। ईसा रूह अल्लाह या इमाम मेहदी ही आदम की सन्तान को उस अनादि पाप से मुक्त कराकर बहिश्तों में ले जाएंगे। जो फिर भी आज्ञा नहीं मानेंगे उन्हें दोजख की आग में जलना पड़ेगा।

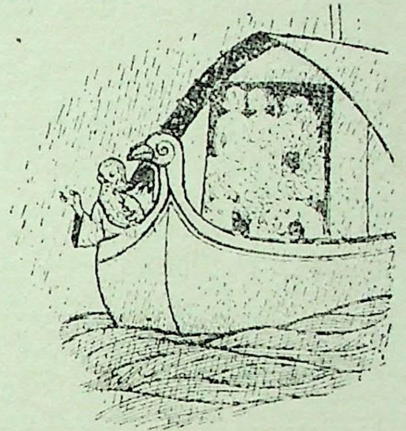
इस कथा मिथक को ब्रह्मात्माओं की सृष्टि लीला के साथ इस प्रकार बैठाया जा सकता है।[४] मानव के रूप में रुहों का अवतरण मानव में रुह फूंकना है। आत्माओं की दुःख देखने की चाह उसकी वर्जित फल खाने की अभिलाषा है। बार-बार सावधान करने पर भी ब्रह्मप्रियाएं माया के वशीभूत हुईं। ईसा रुह-अल्लाह श्री देवचन्द्र जी के रूप में, दूसरे शरीर में इमाम मेहदी महामति के रूप में उन्हें उबारने के लिए पधारे हैं। उनकी आज्ञा को न मानने वाले मुन्किर ही दज्जाल के रूप या बहिष्कृत आदम है। उनको धिक्कार मिली और दोजख की आग में जलना पड़ा। शरण में आने वाले चुने हुए लोग ही बहिश्त के वासी हुए।

कतेब ग्रन्थों में नूह और हूद पैगम्बर की कथा वसुदेव और नंद बाबा की कहानी से मेल खाती है।[५] नूह पैगम्बर चालीस वर्ष कैद में रहे। उनके सात बेटों को काफिरों ने मार डाला। आठवें के जन्म के समय फरिश्ते ने मलकूत से आकर कहा कि इन्हें हूद के घर पहुँचा दो क्योंकि यहां तूफान होगा। उसी ने उन्हें बंधन से छुड़ाया। श्री कृष्ण ने देवकी वसुदेव को कंस की कैद से मुक्त किया।

तोफान के समय हूद पैगम्बर ने कोहतूर पर जाकर अपने लोगों को

बचाया। इन्द्रकोप के समय श्री कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उंगली पर उठाकर ब्रजवासियों की रक्षा की।

नूह तोफान की गाथा में महाप्रलय का वर्णन हैं। नूह ने किश्ती बनाकर अपने लोगों को बचाया—श्री देवचन्द्र जी ने उसे योगमाया की नाव कहा। नूह पैगम्बर का बेटा स्याम अपने लोगों को जिस बाग (गार्डन आफ दी ब्लैसिड) में ले गया, उसे महामति ने वृन्दावन कहा। जहां श्री कृष्ण के साथ ब्रह्मात्माओं ने रास की रसमय क्रीड़ाएँ कीं।



कुरान पुरान में अनेक फरिश्तों और देवी-देवताओं का वर्णन है[९६]। मेकाइल और ब्रह्मा, अजालील और विष्णु, अज्राइल और शिव, बुध जी और इस्राफील इमाम मेहदी और विजयाभिनंद बुध आदि परमात्मा की आज्ञा में रहकर कार्य करनेवाली शक्तियों को ही अलग देशों और भाषाओं में अलग-अलग नामों से पुकारा गया है। इसी तरह हिन्दू यवनों को म्लेच्छ या असुर और यवन हिन्दुओं को काफिर कहते हैं। वास्तव में, प्रभु भक्त सद्‌गुणी ही ब्रह्म सृष्टि—मोमिन हैं। अहंकारी—पापी या काफिर हैं।

सीधे सादे लोगों को मारना नहीं, अपने गुण अंग इन्द्रियों और मन को वश में करना जिहाद है।[९७] वे ही खुदा की राह पर जाने से रोकते हैं। मन ही दज्जाल का रूप है। उसे ही मारने या सीधी राह पर लाने का उपाय इमाम मेहदी बता रहे हैं। पापी, अत्याचारी, अन्यायी लोगों को दंड देना उचित है। सीधे सादे प्रभु भक्त लोगों को मारना पाप है। एक परमात्मा की ओर जाने और ले जाने वाले ब्रह्ममुनि ही—मोमिन और चुने हुए लोग हैं। भेदभाव, फूट और हिंसक वृत्तियों को बढ़ावा देने वाले असुर ही काफिर हैं। किसी एक सम्प्रदाय के सब लोग अच्छे और दूसरे के बुरे नहीं है—सारी दुनियां में किसी भी सम्प्रदाय, वर्ग और वर्ण के लोगों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

ब्रह्म मुनि—मोमिन या चुने हुए लोग परमधाम के वासी हैं, जो सहज शुभ कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। परमात्मा के सिवा उन्हें और कुछ ग्राह्य नहीं लगता। प्रेम ही उनकी साधना है।[९८] जो उन्हें 'एक ब्रह्म' अद्वैत में प्रतिष्ठित करा देती है।

संयमी, मुसलिम और धर्मी लोग साधना से मन, गुण, अंग, इन्द्रियों को वश में करते हैं—अक्षर धाम या जबरूत उनका ठिकाना है।

संसार के प्रवाह में बहने वाले साधारण जीव जिन्हें आमखलक कहा गया है वे मन इन्द्रियों के दास बने घूमते हैं। कियामत के समय नरकों की आग में जलाकर इन्हें शुद्ध किया जायगा।

कुरान और हदीसों में कियामत के समय प्रकट होनेवाले अनेक संकेत बताए गए हैं। जिनके द्वारा जाना जायगा कि कियामत आ गई। शब्दार्थ लेने से वे संकेत समझ में नहीं आते। उनमें से मुख्य सात निशानों को महामति प्राणनाथ ने इस प्रकार स्पष्ट किया[९] —

कियामत के समय दाभतलअर्ज नामक जीव धरती पर पैदा होंगे। उनकी गर्दन मुर्ग की, छाती शेर की, पीठ गीदड़ की, आँखें सुअर की और मुंह इन्सान का होगा। महामति ने यह लक्षण कलियुग या दज्जाल के प्रभाव में बहकने वाले इंसान के बताए जो देखने में मनुष्य है परन्तु उसमें वृत्तियां पाशविक हैं।

कहा है कि "काना दज्जाल जिस गधे पर सवार होगा सात समुन्दरों का पानी उसकी जांघ तक नहीं पहुँच पाएगा।" महामति ने बताया वह दज्जाल मानव का मन है। उसकी प्रभु को देखने वाली आँख बंद हैं। अहंकार रूपी गधा सचमुच कितना ऊँचा है। उसकी थाह पाना कठिन है। याजूज-माजूज को स्वामी जी ने दिन रात बताया जो श्वासों की सेना से जीवन समाप्त कर रहे हैं।

"सूर्य पश्चिम में उगेगा परन्तु उसका प्रकाश वहां नहीं, पूर्व में दिखाई देगा। पश्चिम से कुरान का सूर्य उगा परन्तु उसके प्रकाश को किसी ने न देखा अर्थात् किसी ने समझा नहीं। ऊपर से फितना, फिसाद आदि ने उसे बिल्कुल ढँक दिया। अर्थात् सूर्य उगने पर भी अंधेरा बना रहा। कुरान के अभिप्रेत (बातिन) अर्थ महामति ने स्पष्ट किए।

इस्राफील के दो बार नरसिंघा फूंकने का उल्लेख है—एक बार में पहाड़ रूई की तरह उड़े-उड़े फिरेंगे—दूसरी बार दुनियां नई करके स्थापित की जायेगी।" अहंकार और कुफ्र के पहाड़ उड़ाकर महामति ने सत्य धर्म की स्थापना की।

हकीकी दीन का झंडा पूर्व में हिंद में—गाड़ा गया। उसके नीचे न आने वाले मुन्किर हैं। ईसा रुह अल्लाह, इमाम, काज़ी सब का न्याय करने बैठे

हैं—पहचानने वाले मुक्ति धामों (बहिश्तों) में स्थान पाएंगे।

लोग इन संकेतों के प्रकट होने की राह देख रहे हैं। परन्तु अभिप्रेत (बातिन) अर्थ जाने बिना मर्म को कैसे पा सकते हैं? इस प्रकार महामति ने धर्म ग्रंथों को संदेह में डालने वाली गुत्थियों को तारतम ज्ञान से सुलझाया। विवादास्पद बातों का निराकरण किया और विश्व धर्म की नींव रखी।

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में भी अनेक मिथक हैं। महामति ने उनमें भी समन्वय किया। कुरान कहता है खुदा ने कुन कहा तो सृष्टि रचना हो गई—वेद भी 'ॐ' शब्द के तरंगित होने से सृष्टि का विकास मानते हैं। महामति ने अक्षर ब्रह्म के संकल्प मात्र को सृष्टि का कारण माना।



बाईबिल में सात दिन में सृष्टि रचना बताई गई है[१००] —महामति ने वे सात दिन ब्रह्म मुनियों की संसार में लीला के माने—पहला दिन ब्रज लीला (हूद के घर) का। दूसरा रास लीला (नूह की किश्ती द्वारा बाग में पहुँचाया जाना) और तीसरा हुक्म के स्वरूप ने संसार को कर्मकांड दिया। चौथे दिन ईसा रूह अल्लाह श्री देवचन्द्र जी ने तारतम ज्ञान की कुंजी से सब धर्मों के रहस्य खोले, ज्ञान दिया। पांचवें दिन काजी इमाम मेहदी ने न्याय किया अर्थात् सब को मंजिलें स्पष्ट कीं। छठे दिन मोमिन—ब्रह्मसृष्टि जमा हुए। सातवां दिन परमधाम में पहुँचने पर विश्राम का (आनन्द का) दिन है।

चुने हुए लोग

महामति ने धर्म की आज्ञाओं के शाब्दिक और बाह्य अर्थों को छोड़कर ऐसी आंतरिक व्याख्या की जो सार्वदेशिक और सर्वकालिक है। किसी भी धर्म वाला उसे अस्वीकार नहीं कर सकता। यही नहीं, धर्म की ऐसी व्याख्या को सुनकर विज्ञ जन कह उठते हैं—'यही तो हमारे धर्म का शुद्ध रूप है।' बाहरी कर्मकांड आत्म जाग्रति की राह में—विश्व एकता के प्रयास में बाधक बनते हैं। आत्म जाग्रति के लिए कर्मकांड या शराअ के आध्यात्मिक रूप को मानने वाला किसी भी धर्म की कसौटी पर पूरा उतर जाता है। वह श्वास लेता है, कुछ कहता है तो पवित्रता की सृष्टि होती है। वह जो करता है आदर्श बन

जाता है। उसे नियमों में बंधने की आवश्यकता नहीं। लोग उसे देखकर नियम बनाते हैं। वह सच्चा मोमिन—ब्रह्ममुनि, वैष्णव और स्थित प्रज्ञ सब कुछ एक साथ है। बिना किसी धर्म का बिल्ला लगाए अन्ततः वह अवश्य ही चुन लिया जायेगा। शरीर छोड़ देने पर परमधाम के चिन्मय स्वरूप में जागेगा।

वेद और कतेब के अर्थ रहस्य खोलकर महामति ने सभी धर्म वालों को धर्म के एक ऐसे स्वरूप का दर्शन कराया जो सर्वग्राह्य हो सकता है। वे किसी भी व्यक्ति का धर्म परिवर्तन न करके उसे अपने धर्म के असली रूप में जाग जाने का आग्रह करते थे। यही कारण है कि उन्होंने सुन्दर साथ में प्रवेश करनेवाले व्यक्तियों का यहां तक कि मुसलमानों का भी नाम तक नहीं बदला। तारतम के प्रकाश में सबको एक साथ बिठाकर उन्होंने सत्य धर्म का दर्शन करा दिया।

महामति के प्रवचनों के द्वारा नित्य नए रहस्य खुलते थे, जिनका आनन्द उन लोगों ने अनुभव किया, जो उनके अंग-संग थे।

श्री प्राणनाथ में पंच शक्तियों का, आवेश—श्यामा की आत्मा[101] अक्षर ब्रह्म का तेज (नूर), ज्योति एवं बुद्धि और अब मुहम्मद साहब के रूप में परमात्मा के हुक्म का प्रवेश हुआ। इन पंच शक्तियों को पाकर वे 'महामति' हुए तो वेद कतेब के गुह्य अर्थ स्वयं ही खुलने लगे।

महामति ने देखा कुरान के माननेवाले बातिन अर्थों को छोड़ जाहिरी अर्थों में पड़े भ्रमित हो रहे हैं।[102] उनका विश्वास था कि कट्टर इस्लाम समर्थक अन्धविश्वासी बादशाह औरंगजेब भी जब इस्लाम धर्म के रहस्य को जान लेगा तो अत्याचार और अन्याय को छोड़कर सर्वधर्म सद्भाव की राह पर आ जाएगा।

औरंगजेब को जाग्रत करके सुपथ पर लाने के लिए स्वामी जी मेरता से[103] गोकुल, मथुरा, आगरा होते हुए दिल्ली आए। शेख बदल ने इसी समय आत्म-समर्पण किया। कुछ समय वे विट्ठल गुरु के मुहल्ले में सैयद की हवेली में रहे। वहां बड़ी भीड़ जुटने लगी।—एक फकीर संत 'कुरान पुरान को' संग लेकर चलते हैं और औरंगजेब की धर्मान्धता के विरुद्ध भिड़ने का साहस रखते हैं'—

यह बात सुनकर लोगों को कौतूहल हुआ। कुछ अज्ञानी लोगों ने भय के मारे अपने सम्बन्धियों को वहाँ जाने से रोका। महामति ने स्वयं ही कह दिया:—

'हम मुहिम पर जा रहे हैं। सिर की बाजी लगानेवाले ही यहां टिक पाएँगे। हमारे यहां कायरों का काम नहीं।'

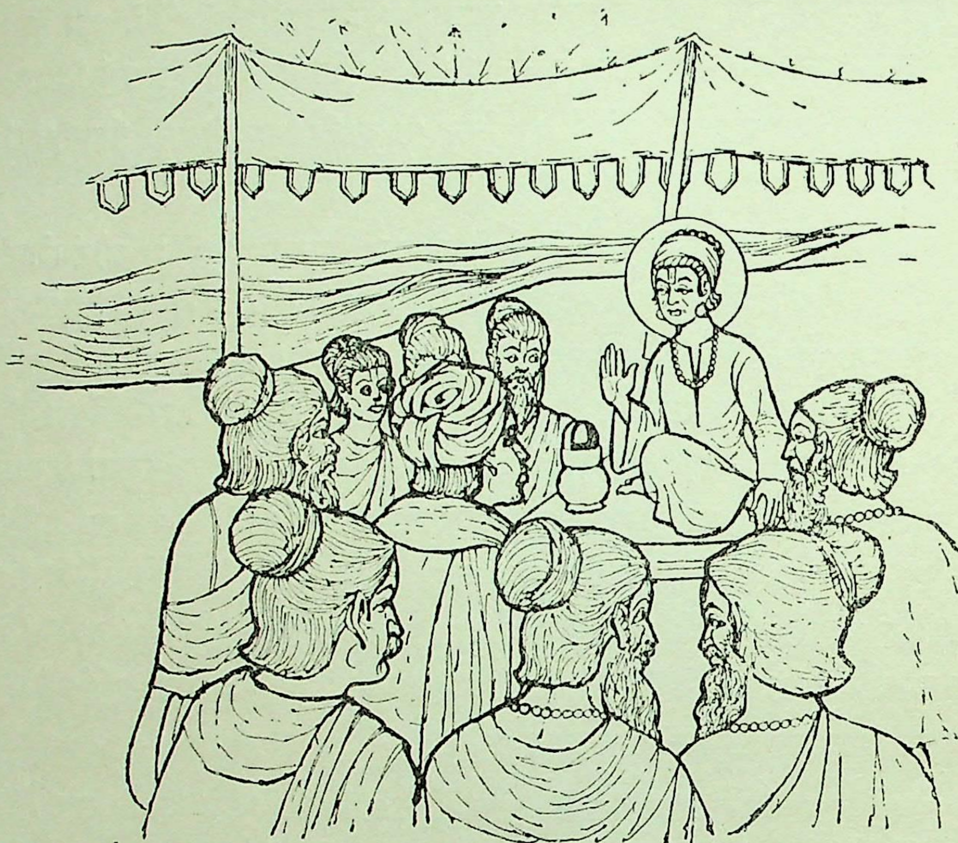
लाल दरवाजे में छत्री की हवेली में बैठकर मन्त्रणा हुई। औरंगजेब को भेजने के लिए पत्र लिखे गए। पत्र हिन्दवी (नागरी लिपि) में था। एक साथी आसाजीत आए तो उन्होंने बताया, 'बादशाह हिन्दुओं का दुश्मन है। प्रातः मुँह देख ले तो गर्दन काट देता है। वह हिन्दवी में पत्र क्योंकर देखेगा।' इस प्रकार वहां नित्य कार्यक्रम बनते कि बादशाह तक कैसे बात पहुंचायी जाये। शराअ का पहरा इतना जबरदस्त था कि उसके कानों तक बात पहुँचाना असम्भव सा लग रहा था। गुरु तेग बहादुर और उनके साथियों के निर्मम हत्याकांड को दो ही वर्ष हुए थे। जनता अब भी त्रस्त थी। महामति ऐसा मार्ग खोल देना चाहते थे कि फिर से आत्म बल जगे। शासक धर्म को अपना हथियार बना कर अत्याचार न कर सकें।

लाल दरवाजा छोड़कर साथी लोग रुहेल खां की सराय में आ गए।[१०४]

पत्रों को फारसी लिपि में लिखवाया गया। श्री लालदास और भीम भाई उसे सुलतान तक पहुँचाने का कार्यक्रम भी बना रहे थे। महामति उन दिनों बाहर थे। उनके आदेश से इस कार्य को कुछ देर के लिए स्थगित किया गया। स्वामी जी ने संदेश भेजा कि—'यह महत्त्वपूर्ण कार्य केवल किसी सनक से पूरा होने का नहीं। हमें वहाँ आ जाने दो—फिर मिल कर योजनाबद्ध कार्य किया जाय।'

हरिद्वार का शास्त्रार्थ और 'निष्कलंक बुध'

इसी बीच १६७८ ई० में, हरिद्वार में विराट कुम्भ पर्व पड़ा। हिन्दू-संप्रदायों के हजारों-लाखों लोग, महन्त, सन्त, साधु जन एवं धर्म प्रचारक वहां एकत्र हो रहे थे।[१०५] बड़े सम्प्रदाय वालों और अखाड़ों को वृन्दावन में एकत्र करके नाम, निशान, ध्वजा आदि के लिए अधिकृत किया जाता था। छोटे सम्प्रदाय वालों को वहां कोई पूछता नहीं था। बड़ी अव्यवस्था और धांधली मची थी। परस्पर कलह और गुटबंदियों के कारण हिन्दू जनता टुकड़ों में बँटती जा रही थी।



यही कारण था कि जब भी कोई विदेशी आया उसके सामने हिन्दू ठहर न सके। एक दूसरे के विरोध के कारण विदेशी सत्ता और विजातीय धर्म को भारत में जम जाने का अवसर मिला। एक ब्रह्म और सत्य धर्म के स्वरूप को भूल कर लोग हजारों-लाखों देवी-देवताओं की पूजा, अन्धविश्वास और घिसी-पिटी रूढ़ियों को धर्म मान चुके थे।

महामति सम्प्रदाय, वर्ण वर्ग के कारण गुटों में बँटे हिन्दुओं को सत्य धर्म की राह पर लाकर एक सूत्र में पिरोने का ऐसा अवसर चूकना नहीं चाहते थे। औरंगजेब को राह लगाने के अभियान के साथ इधर भी ध्यान देना आवश्यक था। वे हरिद्वार आ गए, जहां इनकी ओजस्विनी वाणी को सुन कर सारा जनसमूह इनकी ओर जुटने लगा। बड़े-बड़े मठाधीशों ने रोषपूर्वक इन्हें शास्त्रार्थ के लिए ललकारा।[१०६] महामति ने शांत होकर कहा—'हम किसी से लड़ने-झगड़ने तो आये नहीं। आओ, परस्पर धर्म चर्चा के लिए प्रेमपूर्ण वातावरण बना कर हम लोग बैठें। आप सब पहले अपने-अपने सिद्धांत और ब्रह्म

ज्ञान की बात करें—बाद में मेरी बात सुनें। धर्म का सत्य स्वरूप जनता के सामने रखें जिससे सभी का कल्याण हो। क्रोध और अहंकार को छोड़, शास्त्र के यथार्थ अर्थ लेकर चर्चा करें तो झगड़े का कोई कारण ही नहीं रहता। हम तो समूची मानवता को एक करने निकले हैं। स्वार्थ, अहंकार और परस्पर द्वेष के रहते यह कार्य कैसे हो पाएगा ?'

चार वर्ण, चार आश्रम, चार सम्प्रदाय, षट दर्शन को माननेवाले आचार्य, दशनामी-सन्यासी, योगी, यति, साधु-संत सभी वहां एकत्रित थे। विशाल जन समुदाय के बीच हरिद्वार के 'ब्रह्म-चबूतरा' पर धर्म-चर्चा के लिए विशाल मंडप लगा। सब संप्रदाय वाले बारी-बारी से मंच पर आकर अपने मंत्र-देवता, इष्ट, धाम और सिद्धि के विषय में कहते थे। शास्त्रों में दिए ब्रह्म-ज्ञान के संकेतों तथा मायावी जगत् के पार की बातों को छोड़ वे सब इष्ट साधन, इहलोक और कर्मकाण्ड में ही उलझ रहे थे।

शास्त्रों ने ब्रह्मांड का प्रलय होना बताया है। जब विश्व न रहेगा तो अखंड अविनाशी आत्मा कहाँ रहेगी ? यह प्रश्न किसी से खुल न पाया। इसी संसार को सत्य और ब्रह्म स्वरूप माननेवालों से स्वामी प्राणनाथ जी ने विनम्रतापूर्वक पूछा—"वेद ब्रह्म को अविनाशी और जगत् को मिथ्या बताते हैं—दोनों एक कैसे हुए ? सत्य सत्ता से मिथ्या जगत् कैसे बना ? सच्चिदानंद ब्रह्म से असत् जड़ दुख कहाँ से आया ? सब ब्रह्म है तो अज्ञान कहाँ से आया और इतने शास्त्र किसके लिए रचे गए ?"

इनके प्रश्नों का उत्तर न दे पाने पर वहाँ एकत्रित विद्वान कुछ नम्र और मौन हुए। उन्होंने स्वामी जी से अपना मत प्रकट करने का आग्रह किया। वे जानना चाहते थे कि यह जगत् के बाहर की बात कैसे करते हैं ?

महामति ने बात परमधाम और सच्चिदानंद ब्रह्म से आरंभ की।[१०७] सत्-चिद् आनन्द के प्रकाश से ही अपनी पद्धति को अनुप्राणित बताया। उन्होंने कहा नृप जनमेजय से व्यास मुनि ने कहा कि कलयुग में ब्रह्म-मुनि अवतरित होंगे। वे उत्तम पुरुष के बिना किसी देव की पूजा न करेंगे। पुराण संहिता में ब्रह्ममुनियों की जो उपासना पद्धति बताई है मैं उसी का परिचय आपको दूंगा। उस वस्तु के जो ग्राहक हों वे ध्यान से सुनिए—

"हमारे सद्गुरु ब्रह्मानंद हैं। हमारा सूत्र अक्षर ब्रह्म है[१०८]—शिखा चिद्

स्वरूप परमात्मा हैं। पुरुषोत्तम अक्षरातीत ब्रह्म की हम उपासना करते हैं। परम् किशोरी श्यामा हमारा इष्ट है। पतिव्रता स्त्री की भाँति अनन्य प्रेम से हम प्रियतम अक्षरातीत श्री कृष्ण की आराधना करते है। श्री युगल किशोर—'राज श्यामा' का हम मंत्र जाप करते हैं—हमारे मंत्र का नाम तारतम है, जो माया और ब्रह्म का अलग स्वरूप दिखाकर पूर्ण ब्रह्म की पहचान कराता है। ब्रह्म विद्या हमारी देवी है—जिस पुरी में वह प्रकट हुई उसे नवतनपुरी कहा है। हम स्वयंसिद्ध, स्वसंवेद को प्रमाण मानते हैं। हमारा मूल आनंद है और फल उस आनंद में नित्य-विहार करना है। निजानंद स्वामी श्री देवचन्द्र जी ने इस ज्ञान को स्वयं श्री कृष्ण से प्राप्त किया। उनकी कृपा से ही हम यह सब जान पाए हैं।"

उन्होंने यह भी बताया कि शास्त्रों में क्षय मास होने पर कलियुग के हनन करने वाले 'निष्कलंक बुध' के प्रकटीकरण की जो घोषणा की गई है, उसे सब पढ़ रहे हैं—समझने का प्रयास कोई नहीं करता। सं० १७३५ (१६७८ ई०) का कुंभ पर्व ही वह उपयुक्त समय है।

हरिद्वार में इनकी ज्ञान चर्चा से प्रभावित हुए विभिन्न धर्माचार्यों ने इन्हें पुराणों में सांकेतिक 'विजयाभिनंद बुध निष्कलंक' अवतार माना और तब से उनका 'बुधजी का साका' भी प्रचलित हुआ।

औरंगजेब से सम्पर्क

मेला की भीड़ तमाशे से निपटकर श्री प्राणनाथ जी फिर दिल्ली आ गए।[१०९] दाउद पांडे की हवेली में वे सब सुन्दर साथ को छोड़ गए थे। स्वामी जी शाहगंज में ठहरे। सब साथी भी वहीं उनसे आ मिले और औरंगजेब को पैगाम पहुँचाने की योजना पर विचार करने लगे। शाही आतंक से बचाए रखने के लिए बच्चों और स्त्रियों को दिल्ली से बाहर भेज दिया। चुने हुए बारह साथियों की एक टुकड़ी मुहिम पर जाने के लिए तैयार की गई। उसमें दस हिन्दू थे और दो मुसलमान। सब में धर्म के लिए न्योछावर हो जाने की ललक थी। आसाजोत ने इनका जोश देखा। पत्रों को सुना तो कहा—'हमने सुना था कि दुनिया में बिना सिर के आदमी पैदा होंगे। आज उन्हें प्रत्यक्ष देख लिया। औरंगजेब का साम्प्रदायिक, पक्षपातपूर्ण राज्य और इस्लामी शराअ

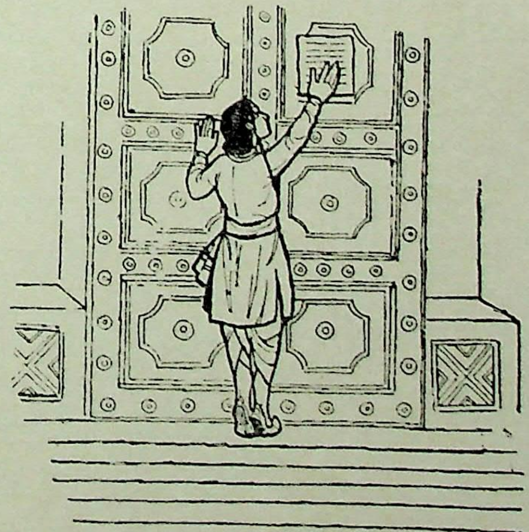
की अंधी कट्टरता का बोलबाला । इसमें तुम ऐसा काम करने जा रहे हो । यह हमारी समझ से बाहर की बात है ?' [११०]

बारह मोमिनों ने महामति प्राणनाथ को भी दिल्ली से बाहर रहने की सलाह दी, ताकि साथियों पर कोई विपदा आए तो बाहर से उन्हें बचाया जा सके । महामति अनूप शहर में छः मास रहे । वहीं गंगा के किनारे 'सनंध' ग्रंथ पूरा हुआ । प्रकाश और कलश गुजराती का हिन्दुस्तानी रूपान्तरन हुआ ।

शेख बदल सनंधों को सिर पर चढ़ाकर बहुत दिन घूमते रहे । ग़नी बेग की हवेली में वे सनंध गाने लगे । मुसलमानों ने उन्हें घेर लिया और बुरा-भला कहा । शेख वापस आ गए । उन्होंने बताया कि हिन्दी में लिखे संदेश बादशाह तक नहीं पहुँच सकेंगे ।

दिल्ली में कायम मुल्ला को वेतन देकर कुरान उतारने का काम सौंपा गया ।[१११] उसकी ढील को देखकर उर्दू बाज़ार से कुरान की 'हुसैनी तफसीर' खरीदी गई ।

फारसी लिपि में पत्र लिखकर इमाम मेहदी और कियामत के प्रकटीकरण के साथ-साथ हकीकी दीन इस्लाम और असली मुसलिम के लक्षण स्पष्ट किए गए । सत्य धर्म की राह पर चलकर संसार का उद्धार करने का आह्वान भी दिया गया । इस पत्र की पांच प्रतिलिपियाँ तैयार करके औरंगजेब के निकटस्थ कर्मचारियों के पास भेजे जाने की योजना बनी ।



गुरु और शिष्य-संवाद शेख मीरांजी के किस्से के रूप में फारसी लिपि में लिखा गया । रुक्के तैयार करके कान्ह जी भाई को पहुँचाने के लिए भेजा । उनके पीछे उनकी सहायता के लिए शेख बदल आदि साथियों को भेजा जाता था । बहुत दिन तक ये लोग भटकते रहे । परन्तु सुलतान औरंगजेब तक बात पहुँचायी न जा सकी ।[११२] तब यही सब बातें संक्षेप में लिखकर नंदलाल घड़ियालची को रुक्का दिया गया कि दरबार में जाने के पहले पांव धोने के लिए बने गुसलखाने

के द्वार पर उसे रात को चिपका देना। उसमें यह भी लिखा था कि इस रुक्के को पढ़े बिना जो दरबार में प्रवेश करेगा उस पर दज्जाल की लानत पड़ेगी।

पत्र पढ़कर दरबार में शोर मच गया। औरंगजेब ने पत्र मंगा कर पढ़ा। कियामत और इमाम मेहदी की बात सुनकर चौंका। उसने आस-पास ढिंढोरा पिटवा दिया कि जब मैं जुम्मा के रोज़ निमाज पढ़ने निकलूँ तो जो भी फरियादी हो, अपना रुक्का मुझे दे दे।

शेख सुलेमान को गुस्से में भर सुलतान ने उसे निजी सहायक के पद से हटाते हुए कहा : 'ये लोग अपना पैगाम लेकर तुम्हें देने आये और तुमने जरा ख्याल न किया। तुम इस पद पर रहने लायक नहीं।' वह पद अब्दुल्ला को दिया गया।[११३]



बारह मोमिनों ने रुक्का दिया तो देखकर बादशाह के गुलाम अब्दुल्ला ने उसे लपक कर फाड़ दिया। धर्मवीरों ने बहुत शोर किया। 'एक तरफ हमारे लिए ही सुलतान खड़ा है। शेख नौकरी से निकाल दिए गए। तुम्हें भी हमारे ही लिए खड़ा किया गया है।' बादशाह को इन फरियादियों का कुछ भी पता न चल पाया। जब सुनवाई न हुई तो जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठकर बारह साथी जोर-जोर से महंमद और इमाम संबंधी सनंधें

गाने लगे। इनके हौसले देखकर जिन लोगों ने बादशाह तक पैग़ाम पहुँचाने में रुकावट डाली थी, वे थर-थर काँपने लगे। मस्जिद का मुल्ला उनके जोश भरे बोल सुनकर प्रभावित हुआ। वह उन्हें सुलतान से मिलाने ले गया।[114] सुलतान ने खड़े-खड़े आसा टेककर बातें सुनीं और इनसे पुस्तक माँगी। साथियों ने लाकर देने का वादा किया। सुलतान ने कहा—'आप क्या चाहते हैं?' साथियों ने उत्साहित होकर कहा—'हमें धन की लालसा नहीं, हम तो आपसे एकान्त में धर्म-चर्चा करना चाहते हैं।'

एकान्त वार्ता का सूत्र पकड़कर काज़ी मुल्लाओं ने बादशाह को आतंकित कर दिया कि हिन्दुओं की चाल में न आओ शाहंशाह। आपके सामने ही यह इतना शोर कर रहे हैं। शाहजहां का राज्य होता तो अब तक इनका सिर धड़ से अलग कर दिया जाता। बादशाह ने उनकी बात पर विशेष ध्यान न दिया। हां, एकान्त मिलन का अवसर जाता रहा। सुलतान ने काजी से कहा—'इन्हें प्रेम से रखो और इनकी बातें सुनो। इनसे जो भी बात हो वह हमें बताई जाए।'

काजी पहले ही पैगाम प्राप्त कर चुका था—उसने उनको नजरबंद करके बहुत कष्ट दिया।[115] सुलतान बार-बार उनकी कुशल-मंगल पूछकर उन्हें आराम से रखने का आग्रह करते। परन्तु उनके कर्मचारी सुलतान से न मिलने का वचन लेने पर तुले थे। कान्ह जी भाई प्राणों पर खेल कर इधर से उधर संदेश ला रहे थे। उनके मुख[116] से जब महामति ने जाना कि उनके प्रियजनों को कष्ट दिए जा रहे हैं तो वे तड़प उठे। मेरे प्यारे मोमिनों को कष्ट देने वाले को अवश्य दंड मिलेगा। उन्होंने अपने साथियों को लौट आने का आदेश दिया—'प्रेम का अस्त्र काम नहीं आया, अब शक्ति से ही इनकी ढिठाई को दूर किया जायगा।' श्री कृष्ण के उपदेश से महाभारत रोका न जा सका था। आसुरी स्वभाव वाले बल प्रयोग से ही वशीभूत होते हैं। यह बात स्पष्ट हो गई।

कहते हैं, एक बार वेश बदल कर स्वयं सुलतान महामति के दर्शन के लिए आया।[117] उसने कहा—'यदि आप इस्लामी शराअ कबूल करके अपनी बात कहें तो मैं मान लूँ। आपको जागीर दूँ और आपकी खिदमत में रहकर हुक्म बजा लाऊँ।' महामति ने कहा—'अंध विश्वास और शराअ की कट्टरता का ही

तो हम विरोध करने बैठे हैं। उसी बंधन में तुम मुझे बाँधना चाहते हो। तुम भी बंधन से निकलकर धर्म की सत्य और मुक्त राह पर चलो। सीधे न मानोगे तो दूसरे उपाय प्रयोग में लाने पड़ेंगे।' रात में सुलतान सोया तो उसने एक अद्भुत स्वप्न देखा—मुसलमान कुरान से दूर भाग रहे हैं। हिन्दू उसके आसपास तवाफ़ कर रहे हैं। उसके मुंह से रूबाई निकल पड़ी।

धर्म के रहस्यों को न समझने के कारण ही औरंगजेब हिन्दू मन्दिरों को गिरा रहा था और गौ ब्राह्मण की हत्या का पाप अपने सिर ले रहा था।[११८] जज़िया फिर से लगा दिया गया। चारों ओर उसकी सेना के लोग निरीह हिन्दू जनता पर कहर ढा रहे थे। गरीब मुसलमानों को भी इस्लामी राज्य का वफ़ादार होने का कोई विशेष लाभ नहीं मिलता था। उनका भी भरपूर शोषण हो रहा था। इने-गिने उच्च कहे जाने वाले वर्ग के कुछ लोगों को छोड़ सारा जन-मानस सशंकित और आतंकित था। औरंगजेब को समझाने के प्रयास को जब शराअ के दंभ ने सफल न होने दिया तो महामति ने हिन्दू राजाओं को सचेत किया। महामति ने ज्ञानी, संत, योद्धा, राजा-प्रजा सबको धर्म-रक्षार्थ आह्वान दिया। उन्होंने कहा—"तुम सब मिल कर औरंगजेब के विरुद्ध कमर बांधो तो सही, मैं तुम्हारे साथ हूँ।" औरंगजेब की विशाल सेना और असीम शक्ति के भय से राजा गण अपने आपको उसका सामना करने में असमर्थ पा रहे थे। उधर जब औरंगजेब ने सुना कि मुसलमानों का भी एक बड़ा विद्वत् वर्ग महामति के झंडे तले आ रहा है तो उसने सेनापतियों को उनका पीछा करने का आदेश दिया।

महामति का धर्म समन्वय

महामति ने वेद और कतेब के अन्दर अद्भुत सामंजस्य दिखाया।[११९] रास लीला खेलने के बाद नया ब्रह्मांड बना तो श्री कृष्ण ही अरब देशों में प्रकट हुए। उन्होंने असुरों को शराअ पर दृढ़ रहने का आदेश दिया। इमाम मेहदी-आखरी ज़माने के स्वामी की प्रतीक्षा करने की बात कही। कृष्ण ही महंमद रूप में आए थे। अब श्री कृष्ण ही पुनः ईसा रुह अल्लाह, इमाम मेहदी-'निष्कलंक बुध' रूप में समूची मानवता को एक सूत्र में पिरोने के लिए प्रकट हुए हैं।

स्वामी जी अपने प्रवचनों में कहते—'नूह नबी के बेटे स्याम—अरब देशों में इब्राहीम से मुहम्मद तक और मूसा, दाउद, ईसा आदि सात कलमा वाले पैगंबरों के रूप में ईश्वर (अल्लाह) का संदेश लाए।'[१२०] हाम ने हिन्दुस्तान में वेद व्यास के रूप में वेदों का विन्यास किया। वेदान्त, गीता, भागवत आदि का ज्ञान दिया। उस कृष्ण परमात्मा की आज्ञा से ही ब्रह्मात्माओं को विविधता दिखाने के लिए अनेक खेल हुए। अनेक धर्म बने। अब इमाम का हुक्म ही इन सबको मिला रहा है। चूँकि इस युग में हिन्दू पीड़ित हैं, इसलिए इमाम हिन्दू के वेष में प्रकट हुए हैं। नहीं तो उनके लिए सब बराबर हैं। बाईबिल में लिखा है कि खुदा के मुंह पर पर्दा होगा। यह इस बात का संकेत है कि हिन्दुओं में प्रकट होने के कारण ईसा मसीह और मुहम्मद साहब के माननेवाले उन्हें पहचान न पायेंगे। श्री कृष्ण पहले ही 'युगे युगे संभवामि' का अवतरण-संदेश गीता में दे चुके हैं। महामति ने इसी सत्य की पुष्टि करते हुए यह भी कहा—'ज़माना खाली नहीं, बिना महंमदी कोए।' मुहम्मद शब्द को उन्होंने व्यापक रूप में परमात्मा के 'हुक्म' का स्वरूप माना। गीता के कृष्ण भी व्यापक अक्षरातीत कृष्ण के संदेशवाहक स्वरूप थे। इसी प्रकार, अरब के महंमद भी उस हुक्म के 'बशरी' (मानवी) रूप थे।

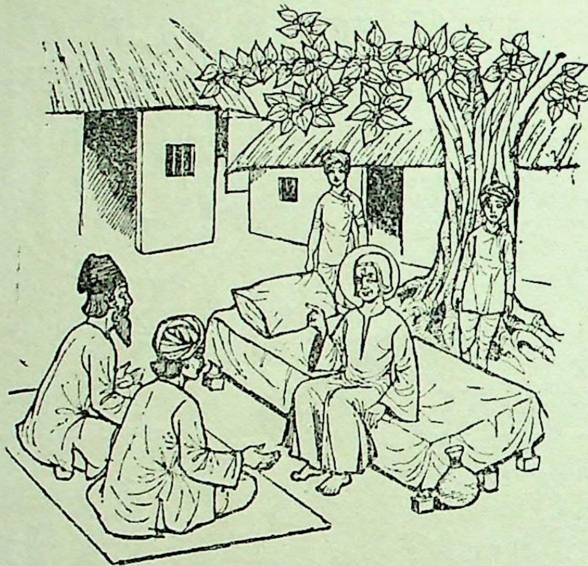




तब महामति कामा पहाड़ी पर थे। प्रवचनों के द्वारा जन मानस को उद्-बोधित करते हुए वे वहां से आमेर होते हुए सांगानेर आए। इन दिनों सुन्दर साथ को असह्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था।[१२१] एक साथ कुरान पुरान की चर्चा हिन्दू-मुसलमान दोनों के गले न उतर रही थी। दोनों ही उनका विरोध कर रहे थे। रूढ़िवादी लोग इनका गांव में टिकना दूभर कर देते थे।

मुकुन्द दास उदयपुर से सांगानेर आ रहे थे—रास्ते में शेख बदल मिले। इन दोनों के पास गांठ में काफी रुपये थे। अकेली वीरान राह छोड़कर गांव में से जाना उचित समझा गया। गांव के बाहर वृक्ष के नीचे चारपाई पर स्वामीजी एक शिष्य सहित विराजमान थे। भोजन की कोई व्यवस्था नहीं हो पा रही थी। मुकुन्द दास और शेख बदल अपना सारा धन उनके चरणों में रखकर कृतार्थ हुए।

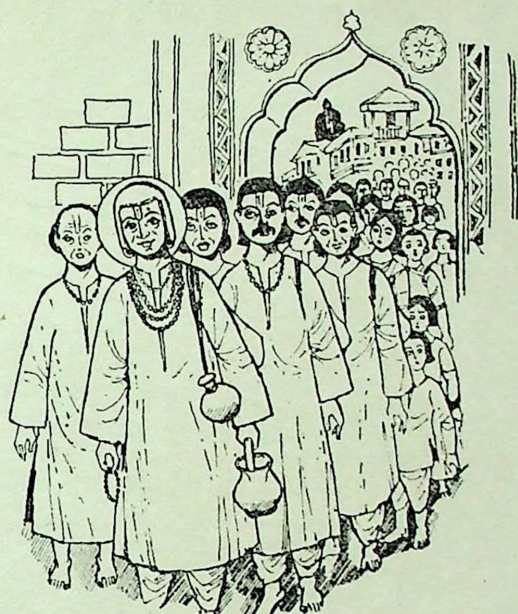
उदयपुर में मुकुंद दास की चर्चा से प्रभावित होकर नगर सेठ लाधु मसानो सुन्दर साथ में प्रविष्ट हुए ।[१३२] अन्य लोगों की प्रार्थना पर स्वामी जी उदयपुर आ गए । उदयपुर में हिन्दू मुसलिम काफी बड़ी संख्या में चर्चा सुनने आते थे। कोई इन्हें मुसलिम फकीर कहता, कोई पहुँचा हुआ साधु बताता । कुछ लोगों ने यह भी प्रचार किया कि इनके पास कोई 'भुरकी' है, जिसे सिर पर डालकर लोगों को दास बना लेते हैं । इसी अफवाह से उदयपुर का राजा इनके दर्शन के लिए आ न सका । दिल्ली में जो साथी औरंगजेब से जूझ रहे थे, वे अब उदयपुर में आकर स्वामी जी से मिले ।



हिन्दू मुसलमान मिलकर वेद के साथ कतेब का भी अध्ययन करें, यह एक अद्भुत बात थी । लोगों की भीड़ बढ़ रही थी कि सुलतान की फौज ने आ घेरा । उदयपुर के राजा ने प्रार्थना की कि 'आप कुछ दिन के लिए यहां से अन्यत्र चले जायें—शाही दबदबा कम होने पर फिर पधारिएगा ।' श्री प्राणनाथ का उत्तर था—'आप हमें शाह के हवाले कर दें ।' राजा के बार-बार आग्रह पर श्री प्राणनाथ जी ने वहां से हट जाना ठीक समझा । तब उनके साथ हजारों लोग चलने को तैयार हो गए । महामति ने उन सबसे कहा—'जो मेरे साथ चलना चाहें वे फालतू सामान छोड़कर निर्गुणी साधु वेष में चलें ।' बस, फिर क्या था! सारा सामान गरीबों में बांट दिया गया। बालकों, युवकों और स्त्रियों सहित हजारों लोग साधु वेष बना कर चल पड़े । उन्होंने अपने भेष बदल कर कानों में बाले पहने । भगवा वस्त्र पहना ।

स्वामी जी ने भी अनुपम वैरागी का बाना पहना ।[१३३] सिर पर गोटे वाली कनढपी, माथे पर चन्दन की दो रेखाओं के बीच गोल टीका । उनके बीच उन का तेजस्वी व्यक्तित्व सूर्य के समान प्रखर तथा देदीप्यमान था। कानों में सोने के बाले और श्रवनी पहनीं। गले में तुलसी की कंठी और चार बड़ी मालाएं थीं ।

अंग पर लोई से सिला चोगा । ओढ़ने को गाढ़ी गुदड़ी । गले में सूत की बनी सेली (माला) और सुमरनी (छोटी माला) । धोती धारे और कांधे पर अंगोछा । एक तूम्बा हाथ में, दूसरा कमर में बंधा । पांव में खड़ाऊं । उनका स्वरूप देखकर लगता था, इन्हें फकीरी से प्रेम हो गया है । किरंतन के कई प्रकरणों में फकीरी (कामरी) को परमात्मा की सुहागिनों का शृंगार बताया गया है । इस अद्भुत फकीरी सज-धज में हिन्दु-मुस्लिम दोनों की सधुक्कड़ी वेष-भूषा का समावेश था । स्वामी जी को देख सबने यही बाना पहना । कलियुग में दज्जाल रूपी शैतान, अपने मारने के लिए आई इतनी बड़ी फौज को देख कर कांप उठा ।



इस्लाम के कई औलिए और मुल्ला-मौलवी इस समय स्वामी जी से तक-रार करने आए । कुरान के रहस्यों को इनके मुख से सुनकर प्रभावित हुए और अपने भाग्य को सराहने लगे । धर्म ग्रन्थ किसी खास धर्म के मानने वालों या सम्प्रदाय में आस्था रखने वालों के ही नहीं होते, उनका ज्ञान तो पूरी मानवता की धरोहर है । भाई इब्राहीम दौलत खां पठान साथी बने । उनके वंशज आज भी पन्ना मन्दिर में दर्शन करने आते हैं ।

नवरंग स्वामी—मुकुन्द दास

अब महामति ने मुकुन्द दास जी को कहा कि आप औरंगाबाद के लिए प्रस्थान करें । स्वयं स्वामी जी मंदसोर चले आए ।[१२८] औरंगाबाद में भावसिंह हाड़ा प्रभु भक्त राजा थे । आज्ञा पाकर मुकुन्द दास जी तुरन्त वहां गए । शहर में राजपुरोहित पंडित रामदास जी मिले । राजा से मिलवाने का वचन देकर वे मुकुन्द स्वामी को घर ले गए । दूसरे दिन प्रातः स्नानादि के बहाने नदी



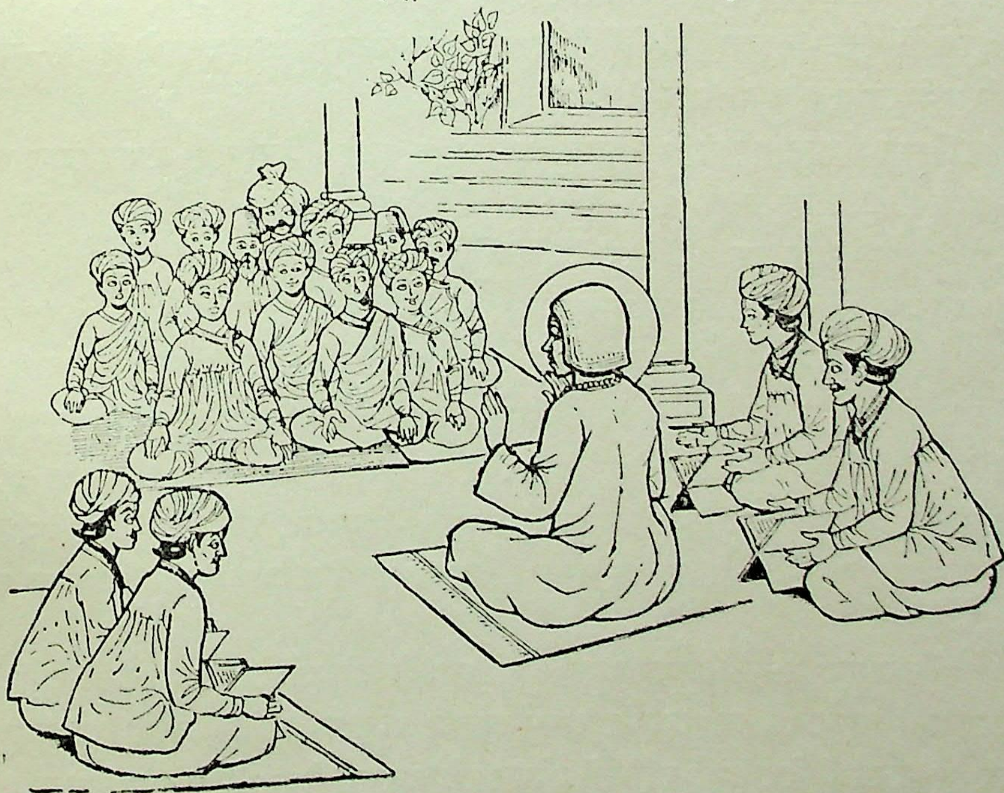
पर ले गए। लेकिन वहां अपनी लाठी से मुकुन्द दास जी को खूब पीटा। सब कुछ छीन-छानकर नदी पार भेज दिया और कहा फिर वापस आए तो जान से मार दूंगा। मुकुन्द दास जी कहां हार मानने वाले थे ? नदी किनारे मन्दिर में छिप गए। उन्होंने भीख मांगकर किसी प्रकार दो रुपये एकत्रित किए। उनसे रेशमी थैली बनाई उसमें पत्र और प्रसाद रखकर जब राजा वहां दर्शन करने आए तो प्रसाद के बहाने महामति का पत्र भी उन्हें दे दिया। राजा हाड़ा उनके विवेकपूर्ण वचनों से बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने महामति प्राणनाथ जी को बुला भेजा और सत्संग का आनन्द लेने लगे। किन्तु कुछ दिन बाद ही राणा का अकस्मात देहान्त हो गया।

जहान मुहम्मद ने कुरान की चौदह तफ्सीरें (अनुवाद) पढ़ी थीं। कुरान उन्हें कंठस्थ थी। पर महामति द्वारा कुरान की व्याख्या सुनकर उन्हें विश्वास हो गया कि ये ही आखरी जमाने के खाविंद—इमाम मेहदी हैं।[१२५] कियामत के सात निशान और कब्रों से मुर्दे जाग उठने की बात कोई समझ नहीं पा रहा था। महामति ने नश्वर शरीर की कब्र में मृतक के समान सोई आत्मा का जागना ही कियामत का उद्‌देश्य बताया। फतह महम्मद ने चालीस हदीस लिख भेजी। महामति के शिष्यों ने ही उनके अर्थ खोल दिये तो उसे भी उनके इमाम

मेहदी होने का विश्वास हुआ। उनके साथ और भी बहुत लोग सुन्दर साथ में प्रवेश पा गये।

औरंगाबाद में ही, उदयपुर से एक साथी कृपाराम पत्र लेकर पुकारते हुए आए कि उदयपुर में, सुन्दर साथ पर वहां के राजा ने अत्याचार किये हैं।[१२६] वे भाग कर पहाड़ों में भटक रहे हैं। महामति स्वयं कष्ट झेल सकते थे। उनके प्राण-स्वरूप सुन्दर साथ कष्ट में है, यह वे सहन नहीं कर पाते थे। पहली बार, जीवन में गिड़गिड़ाकर अपने प्रियतम परमात्मा को उलाहना दिया—'आपने हमें कहीं का नहीं रख छोड़ा। माया का अस्तित्व नहीं, लेकिन हमारे मन को इसने भ्रम में डाल दिया। आपके बिना हमारा कोई नहीं है, तो भी संसार से प्रेम लगाकर हमें पतिता कहलाना पड़ा। हमारे ऐसे क्या अवगुण थे स्वामी! जो हमें इतना दुःख दिखा रहे हैं।' प्रियतम ने कातर पुकार सुनी और आगे का मार्ग सहज हुआ। 'किरंतन' ग्रन्थ में संग्रहीत इन पांच प्रकरणों को पढ़ कर पत्थर की तरह कठोर मन वाले व्यक्ति भी द्रवित हो उठते हैं।

औरंगाबाद में धर्म चर्चा की त्रिवेणी का संगम हुआ। जहाँ भवानी भट्ट गीता, बुध स्तोत्र, भागवत आदि हिन्दू धर्म ग्रन्थों की कथा सुनाते। जहान महम्मद



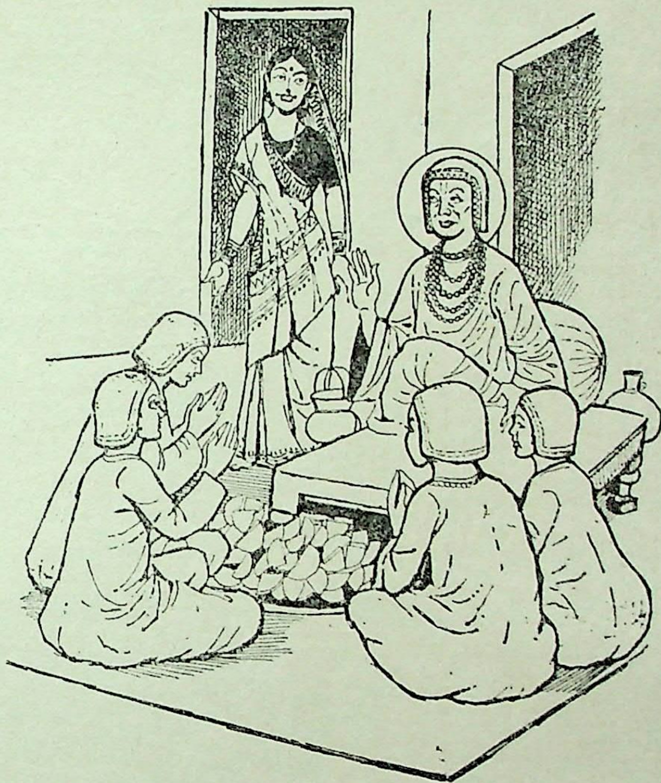
कुरानादि की चर्चा करते। कबीर की साखियों के नये अर्थ रहस्य खुले। भोजनोपरान्त बीच में महामति आसन पर विराजते। एक ओर लालदास कतेब ग्रंथों के अर्थ निकालते तो भवानी दास उन्हीं की समकक्ष बातें भागवत से निकाल कर बताते। स्वामी जी उनके रहस्य समझाते—सुन्दर साथ सुनने वाले थे। अनपढ़ साधारण लोग भी कुरान-पुरान की ऐसी बातें करने लगे कि बड़े-बड़े विद्वान दांतों तले उंगली दबाते। कुरान में कहा है कि कियामत के वक्त उम्मी (अनपढ़) लोग कुरान समझायेंगे। यह घोषणा भी सत्य सिद्ध हुई।

कृष्ण अवतरण, कृष्ण की त्रिधा लीला, पैगम्बर हूद के घर फरिश्ते का अवतार—इन्द्र कोप, तथा प्रलय एवं पुनः सृष्टि में रुहों का अवतरण, ईसा रुह अल्लाह और इमाम मेहदी का प्रकटीकरण, कियामत के सात बड़े निशान, तीन प्रकार की सृष्टि आदि की बातें लोगों को इस प्रकार कंठस्थ हो गयीं, मानो बच्चों की कहानियां हों। खाना-पीना-स्नानादि सब अमृतमय वचनों से संपन्न हो रहा था। दिन-रात की सुधि किसे थी—पलक झपकते दिन बीत जाते। रात-रात भर चर्चा होती। सुन्दर साथ में प्रेम चर्चा और आनन्द का ऐसा वातावरण बन गया मानो परमधाम धरती पर उतर आया हो। माला-टीका पहने लोगों के हाथ में पुरान कुरान दोनों ही देखकर साधारण लोग अचम्भे में थे—यह कैसे धर्म का प्रचार हो रहा है!

कलियुग-शैतान की सेना ने बहुत हाथ-पांव पटके। मेरता से लेकर अब तक सत्य धर्म की प्रतिष्ठा की राह में अनेकानेक संकट उपस्थित किये। बाईबिल और कुरान में यह प्रसंग आया है कि मूसा और हारुन ने अपनी कौम को क्रूर फरउन की दासता से मुक्त कराना चाहा तो फरउन को सेना ने उनका पीछा किया। राह में कुलज़म दरिया था। मूसा के अनुयायी अपने विश्वास के बलपर उससे पार हो गए। आततायी फराउन को सेना नष्ट हो गई। महामति का 'कुलजम सरूप' भी एक ऐसा ही सागर है, जिसमें अहंकार, खुदी, कुफ्र और आडम्बरों के भ्रम टूट (डूब) जाते हैं। आत्म-विश्वास, प्रेम और सत्य धर्म में आस्था जागती है। भवसागर पार होकर अद्वैत में प्रवेश का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

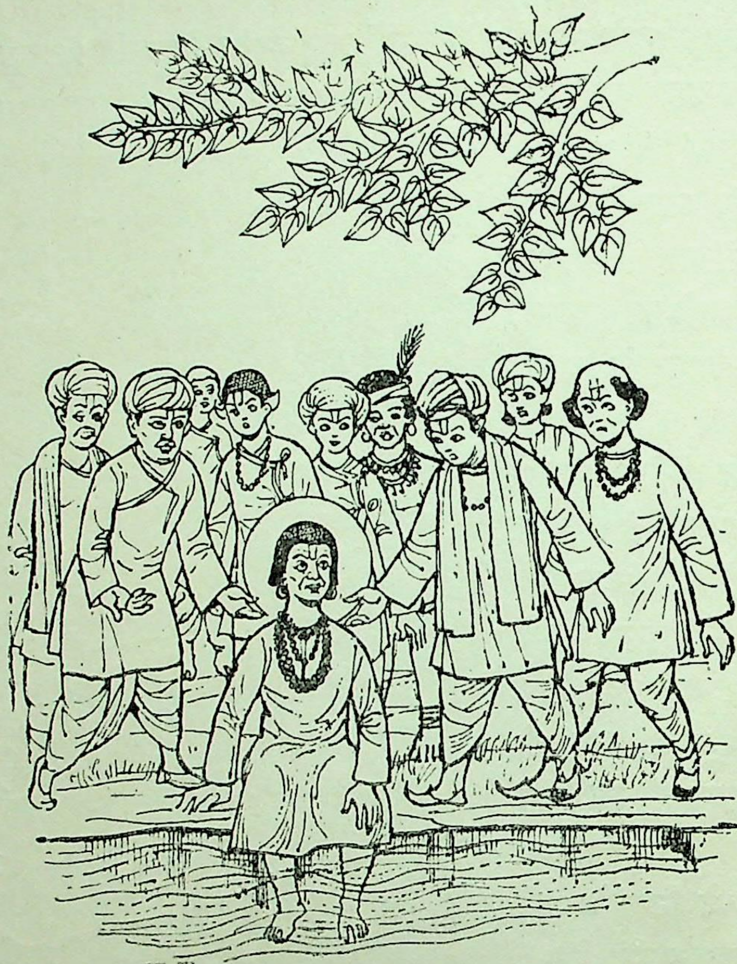
औरंगाबाद से बुढ़ानपुर होते हुए स्वामी जी आकोट पधारे। वहां से कापस्तानी पहुंचे। फिर यहां से रामनगर की राह पर चले। उनके साथ बहुत सारे 'सुंदर साथ' थे। कहीं-कहीं तो लोग इनके अद्भुत वेष और प्रचार से सशंकित

भी हो जाते। 'सुन्दर साथ' झोलियां लेकर बाहर निकलते। टुकड़े मांग लाते। श्री प्राणनाथ ग्रहण करते हुए विनोदपूर्ण शब्दों में कहते—'किसकी झोली के हैं, बड़े स्वादिष्ट हैं।'[१२७] वहां से रामनगर की राह में अनेक पड़ाव पड़ते गए। आवागमन के साधनों का अभाव, अधिकतर पैदल ही यात्रा करनी पड़ती थी। श्री प्राणनाथ का शरीर वृद्ध हो चला था। आत्म तेज और 'सुन्दर साथ' का संकल्प ही उनका बल था, जिस पर वे चल रहे थे। यही नहीं, संग में हजारों सुन्दर साथ की एक पूरी 'पलटन' चल रही थी जिनके भोजन, स्वास्थ्य तथा रात को टिकाने की व्यवस्था सहज नहीं थी।



सुलतान के सेनापति पुरदल खां ने शाही फर्मान पाकर शेख खिदर को श्री प्राणनाथ जी को पकड़ने के लिए भेजा।[१२८] शेख खिदर और भिखारी दास उनकी चर्चा से बहुत ही प्रभावित हुए। उन्होंने औरंगजेब को पत्र लिखा जिसका आशय था कि हम तो इमाम मेहदी के साक्षात् दर्शन कर कृत-कृत्य हुए हैं, आप भी ऐसा अवसर न खोयें। शेख तो चले गए, भिखारीदास सपरिवार वहीं रह गए। शाह की सेना के कई लोग भी वहीं रहने लगे।

रामनगर के राजा ने श्री प्राणनाथ और उनके साथियों पर सुलतान की कड़ी नजर देखी तो वहाँ से हट जाने की विनय की। स्वामी जी वहाँ से गढ़ा चले आए। गढ़ा के एक बाग में दीवान देवकरण जी, स्वामी जी से मिले। उन्होंने अपने काका श्री छत्रसाल को स्वामी जी के विषय में बताया तो वे इनसे मिलने को उत्सुक हुए। कार्यवश छत्रसाल वहाँ से निकल न पाये तो उन्होंने श्री प्राणनाथ जी को मऊ (पन्ना के निकट) बुला भेजा।



राह में किलकिला नदी के किनारे अमराई घाट पर डेरा किया गया। लोगों ने नदी का जल विषयुक्त बता कर पीने से मना किया।[१२९] सुन्दर साथ ने स्वामी जी के चरण का अंगूठा धोकर नदी में डाला पुन: सब-के-सब जल में स्नान के लिए उतर आए और कहा—'आज से यह जल अमृत तुल्य हो गया। आप बेखटके पी सकते हैं।' सन्तों की चरण-रज में परमात्मा की कृपा और करुणा का सागर छिपा रहता है।

महाराजा छत्रसाल से मिलन

दूसरे दिन सन्ध्या समय स्वयं महाराजा छत्रसाल श्री प्राणनाथ के दर्शन कर कृतकृत्य हुए।[१३०] मुहिम पर जाते समय जब वे प्रणाम करने आये तो श्री प्राणनाथ ने अपनी तलवार उन्हें बांध दी। सिर पर रूमाल देकर आशीर्वाद दिया—'तुम सदा विजयी रहोगे। तुम्हारी धरती से हीरा निकलेगा—तुम महान सम्राट बनोगे।' सेना की छोटी-सी टुकड़ी लेकर छत्रसाल ने मुगल

सुलतान से कई मौकों पर टक्करें लीं और विजयी रहे। सेना के लोगों ने इसे महामति की कृपा ही माना।

महाराजा छत्रसाल ने अन्त:पुर में जाकर रानियों से कहा घर में प्रभु का पदार्पण हुआ है। आप सब दर्शन के लिए जाइये।[111] छत्रसाल श्री प्राणनाथ जी की पालकी को कंधे पर उठाकर अपने महल ले गए। वहाँ राजा ने पाग और रानी ने साड़ी के पांवड़े बिछा कर उनका स्वागत किया। स्वामी जी को बाई जी राज सहित सिंहासन पर बिठाकर राजा ने राजसी श्रृंगार कराया और उनकी आरती उतारी। छत्रसाल ने राज्य सहित अपना सर्वस्व उनके



चरणों में अर्पित कर दिया और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। महामति ने आस-पास के राजाओं को बुलाकर छत्रसाल का राजतिलक किया और उन्हें महा-राजाधिराज का पद दिया। इस प्रकार आत्म तेज और मनोबल, आशीर्वाद एवं हीरों का वरदान पाकर महाराजा छत्रसाल सचमुच औरंगज़ेब के कलेजे के शूल बन गये। उन्होंने छोटी-बड़ी अस्सी लड़ाइयां लड़ीं, लगभग सबमें विजय उनकी ही रही। सनकी औरंगजेब समझ चुका था कि कौन-सी ताकत छत्रसाल के साथ है। परन्तु वह शराअ की कट्टरता से मुक्त न हो सका। अन्तिम

समय निराशा से उसके मुख से निकला :—

'न जाने मैं किसलिए दुनिया में आया था। मेरे जीवन का उद्देश्य पूरा न हुआ।'

पन्ना में धर्म राज्य

श्री प्राणनाथ जी के अन्तिम ग्यारह वर्ष पन्ना में बीते। उनके संरक्षण में महाराजा छत्रसाल ने एक आदर्श राज्य की स्थापना की। तब तक कट्टर इस्लामी व्यवस्था के विरुद्ध भारत के विभिन्न क्षेत्रों में कई जातियां संगठित हो गई थीं—सिख, राजपूत, बुँदेले, मराठे सभी पूर्ण शक्ति लगाकर विरोध में खड़े हो गए। अफगान और मुसलमान सरदार भी औरंगजेब के आतंकपूर्ण शासन से तंग आ चुके थे। उन्हें बार-बार हर्जाना भरना पड़ता था। इन युद्धों के लिए विदेशी अस्त्र और बारूद वगैरह क्रय करने में मुगलों का खजाना खाली हो गया था। यही नहीं, व्यापार के लिए आये विदेशी व्यापारियों को भारत में सत्ता जमाने का बढ़िया वातावरण दिखाई दिया। वे अपनी कूटनीतियों से हिन्दुस्तान में धीरे-धीरे अपना साम्राज्य विस्तार कर रहे थे।

दूसरी ओर महाराजा छत्रसाल के राज्य में अस्त्र, बारूद तथा दैनिक आवश्यकता की वस्तुएं लोग स्वयं बनाते थे। प्रजा खुशहाल थी। हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई की तरह रहते थे। वे एक-दूसरे के धर्म और संस्कृति का सम्मान करते। परस्पर धर्म-ग्रंथों को पढ़ते। धर्म-सभाएं और गोष्ठियां होती थीं। विद्वान और कवि उनके राज्य में आश्रय पा रहे थे। छत्रसाल के राज्य की सीमा के विषय में कवि ने कहा है :—

'इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टौंस।
छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू हौंस॥'

जैसे आततायी राजा कंस के युग में ब्रज भूमि में आनन्दमय वातावरण था। वैसे ही औरंगजेब के अत्याचारों से संत्रस्त लोग छत्रसाल के आदर्श राज्य बुन्देलखंड में शान्ति पाते थे।

चारों वेद शास्त्र, पुरान और चारों कतेब ग्रंथों में जो रहस्य छिपे पड़े थे, तारतम के प्रकाश से सब प्रकट हुए।[१११] छत्रसाल ने जब सुना कि कुरान के अन्दर भी ब्रह्मसृष्टि के आगमन और परमधाम के संकेत हैं तो उन्होंने कहा—

'आपने तो मेरे हाथ में शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के अस्त्र दे दिये हैं । अब हम किसी से भयभीत नहीं होंगे । आसुरी शक्तियां हमारा क्या बिगाड़ेंगी ? हम उन्हें बांध कर आपके चरणों में ला पटकेंगे। तलवार से अन्यायी मुगल सम्राट को और आत्म ज्ञान से अज्ञान को मिटा देंगे। कई थोथे पंथ चल पड़े हैं, जिनसे जनता गुमराह हो रही है । हिन्दू-मुसलमान दोनों को सत्य धर्म की राह पर चला कर सहज आनन्द की मंजिल तक ले जाना हमारा कर्तव्य है । जो हमारी बात सुनकर सत्य धर्म में प्रतिष्ठित होगा, छत्रसाल उस पर तन, मन, धन न्यौछावर कर देगा । उनका दिव्य आवेश देखकर महामति ने अपने 'कियामतनामा' ग्रंथ पर उनके नाम की मुहर लगा दी ।



इस प्रकार महामति के संरक्षण एवं जागरण-नाद में इस्राफील के सूर फूँकने के स्वर को सुनकर आत्माएं फ़रामोशी की नींद से जागने के लिए अंगड़ाई ले रही थीं ।[१३३] एक फूँक से कुफ्र, झूठ और अहंकार के पहाड़ रुई के फाहों की तरह उड़ गए। दूसरे से सत्य की स्थापना हुई। शैतान-काना दज्जाल मौत की घड़ियां गिनने लगा । प्रभु के राज्य की स्थापना की बेला आ गई। शरीर रूपी कब्र में मृतक समान सोई आत्माएँ ब्रह्मज्ञान का अमृत पीकर मुक्त हो रही थीं। उनकी संगत से, उनके नूर के प्रकाश से राह पाकर संसारी जीव भी मुक्ति और आनन्द के अधिकारी बने। सभी वर्ण, वर्ग, सम्प्रदाय और जातियों के लोग एक जगह इकट्ठे हुए। एक साथ बैठना, खाना-पीना, प्रभु चर्चा आदि सब सहज ही सम्पन्न हो रहे थे । अपनी पिछली जातियों और पुरानी दुश्मनी को लोग भूल चुके थे । सब एक ही परमात्मा की उपासना मिलकर करते । स्वामी जी बीच में बैठते । पास ही रेहलों पर सभी धर्म-ग्रंथ रखे जाते । उन सबके बीच महामति उन ग्रंथों के विषय में उठने वाली शंकाओं का निवारण करते । ऐसा

सामंजस्यपूर्ण वातावरण था—जिसकी कामना हम सबके दिल में है। दुनियां में ऐसी ही धर्ममय क्रान्ति का स्वप्न हम देख रहे हैं।

१६९४ ई० में पन्ना, मध्य प्रदेश की पुण्य भूमि में श्री प्राणनाथ ने मेहराज ठाकुर के नश्वर शरीर का त्याग किया। उनकी आत्मा 'महामति' आज भी 'कुलजम सरूप' के माध्यम से जिज्ञासु सद्धर्म अन्वेषकों का मार्ग प्रशस्त करती है।

ब्रह्मसृष्टि के प्रताप से दुनिया के लोग मुक्त हुए।[१३४] संसार के जीवों में प्रवेश करके आत्माओं ने विश्व को स्वप्नवत् देखा। स्वप्न में वे भ्रमित अवश्य हुई परन्तु जब उनके प्रियतम के ज्ञान और आवेश का सम्बल उन्हें मिला तो वे प्रेममयी बनी। इनके प्रेम का स्पर्श जिसे भी मिला उसे इस संसार में ही अखंड सुख प्राप्त हुआ। आत्म-प्रेम में इतना बल है कि स्वार्थ, अहंकार, मोहादि के भावों के खारेपन से मुक्त होकर प्रेम के अमृत से समस्त विश्व प्लावित हुआ। नश्वर जीवों को प्रियतम का स्पर्श मिला। मृन्मय चिन्मय बन गया। विकार स्वयं ही छूट गये—समस्त ब्रह्मांडों के जीव अक्षरातीत ब्रह्म श्री कृष्ण के सम्मुख हुए। नींद में सपने की तरह ब्रज का, अर्द्ध चेतना में रास का और अन्त में, जाग्रतावस्था में जागनी लीला का सुख अनुभव कर ब्रह्मात्माएं प्रियतम की हंसी और कौतुकपूर्ण खेल का आनन्द लेती हुई परमधाम में जगीं। ब्रज और रास लीला की तरह जागनी लीला भी अखंड है—अर्थात् आत्माएं अपने विवेक को जगाकर आत्मबल द्वारा संसार में रहती हुई परमधाम के आनन्द का अनुभव प्राप्त करती हैं, करती रहेंगी—

'इत हो बैठे घर जागे धाम, पूरण मनोरथ हुए सब काम।
धनी महामत हँस ताली दे, साथ उठा हँसता सुख ले ॥'

इस प्रकार परमधाम के अनन्त अखंडानन्द की तुलना में अपनी कौतुकमयी लीला द्वारा आत्माओं को तनिक बेसुधि के आवरण में, स्वप्न की तरह नश्वर संसार का सुख-दुःखमय खेल दिखाया।[१३५] संसार की मृगतृष्णा में भटकते हुए जब उन्हें परमधाम के अमृत का स्वाद मिला तो उन्हें परमधाम के अपने प्रभुत्व की बात बहुत प्यारी लगो। परन्तु स्वयं परमात्मा अपने चिन्मय स्वरूप में सामने नहीं आते, इसलिये यह खेल उन्हें देर तक बाँधे नहीं रख सकता। परमधाम की स्मृति बराबर बनी रहती है। संसार में कर्त्तव्य कर्मों के दायित्व को निभाती हुई शुद्ध बुद्ध आत्माएं इस तिलस्मी दुनियां से मुक्ति की कामना करती हैं। शरीर छोड़ देने पर अपने चिन्मय शरीर में जागकर अखंडानन्द का उपभोग करती हैं।

संदर्भ संकेत

वृ० मु०—वृत्तांत मुक्तावली, ब्रजभूषणकृत
ला० बी०—लालदास बीतक
कु० स्व०—कुलजम स्वरूप
ता० वा०—तारतम वाणी में संग्रहीत ग्रंथों के संक्षिप्त संकेत, प्रका० श्री प्राणनाथ मिशन
श्री रास—(सं०) डॉ० रणजीत कुमार साहा, डॉ० हरेन्द्र प्र० वर्मा, श्री प्राणनाथ मिशन,
प्र० गु०—प्रकाश (गुजराती)
प्र० हि०—प्रकाश (हिन्दुस्तानी)
षट०—षटरितु
खु०—खुलासा
क० हि०—कलश (हिन्दुस्तानी)
क० गु०—कलश (गुजराती)
कि०—किरंतन
सा०—सागर
सि०—सिनगार
खि०—खिलवत
परि०—परिक्रमा
सि० वा०—सिन्धी वाणी
मा० सा०—मारफत सागर
कि० ना० (बड़ा)—कियामतनामा बड़ा
कि० ना० (छोटा)—कियामतनामा छोटा
ती० कि०—तीसरा कियामतनामा (अप्रकाशित)
नि० च०—निजानन्द चरितामृत, पं० कृष्णदत्त शास्त्री
जा० मा०—जामुल मारफत (अप्रकाशित)
कु० प्र० बा०—कुरानी प्रगट वाणी (अप्रकाशित पांडुलिपि)
वि० प० द०—विराट पट दर्शन, पं० कृष्णदत्त शास्त्री
प्रे० द—प्रेम दर्शन, श्री जयदयाल गोयनका, गीता प्रेस, गोरखपुर
भाग०—श्रीमद्भागवत
गीता—श्रीमद्भगवतगीता
ऐ० प्र० छ०—ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल : डॉ० महेन्द्र प्रताप सिंह, श्री पटल प्रकाशन, नई दिल्ली,

संदर्भ-क्रम

१. वृ० मु०—प्र० २/५-६; १३, १४, ४४; प्र० ३/चौ० २४-२५; २८-३१
२. ला० वी०—प्र० २/३८-३९; प्र० २/२९-३०, ३५
३. ला० वी०—प्र० २/२९-३०, ३५
४. ला० बी०—प्र० २/३६-३७, ४०
५. वृ० मु०—प्र० ६/२८, ३०, ३७
६. वृ० मु०—प्र० १०/६-२१; २५-४५
७. वृ० मु०—प्र० १०/६०; प्र० ११/२, ७, ८, १५, २७, ३९; प्र० १२/६; प्र० २५/३१, ३२, ४१, ४२; प्र० २६/१६, १७, २५, ३९, ४१
८. वृ० मु०—प्र० २७/१, २२; प्र० २८/२, १७; प्र० २९/३,५-९ प्र० २८/४४-४८; ५२, ८२-८३; प्र० २९/१७-२३, २५-२८ प्र० २९/४६-४७, ५०, ५४, ६०; प्र० ३०/३२, ३४
९. वृ० मु०—प्र० ३१/५
१०. वृ० मु०—प्र० ३२/४; १२-२०, २४-२८; ३३-३४; ४२, ७१-८४; ८७-९०; १००-१०८-११०, ११८-११९; प्र० ३३/२२, ३४, ३८, ६९, ७२-७३
११. प्र० हि०—(प्रगट वाणी)-प्र० ३७/६, ८-९
१२. परि०—(परमधाम वर्णन)—प्र०१३/७०-७७; प्र० २४/३; प्र० २१/ ११, १४ प्र० २५/७; प्र० १४/५९ प्र० ११/७६; प्र० २९/७६; प्र० २९/७७; प्र० ११/६९;
१३. प्र० हि० (प्रगट वाणी)—प्र० ३७/१०, ११, ३, १२
१४. खु०—प्र० १७/४६—४८
१५. कु० प्र० वा०—चौ० १२-१४
१६. प्र० हि० (प्रगट वाणी)—प्र० ३७/१३,१५
१७. सागर—प्र० २/३,१३, ३६
१८. खिलवत—प्र० ११/३३-३४
१९. खिलवत—प्र० १५/२७; प्र० १६/४५, ३९, ५१, ७३, ७४
२०. भागवत—२/५/२१, २२, ३२-३३
२१. ,, —२/६/२२, ३०-३१, ४१; २/१०/११
२२. ,, —३/६/-८
२३. ,, —१/३/३०-३१; ३/५/२४
२४. प्र० हि० (प्रगट वाणी)—प्र० ३७/१८-२०; प्र० ३७/२१-२५;
२५. क० हि०—प्र० १९/४०, ४८, ४९, ५६
२६. श्री रास—अंतर्ध्यान लीला—प्र० ३३/६, ७, २१;
२७. श्रीमद्भागवत —श्रीकृष्ण बाल-लीला गीता ९/२३
२८. प्र० हि०—प्र० ३७/२६, ३२-३४
२९. " —प्र० ३७/३९; श्री रास-प्र० ५/११-१५, १९, ३०
३०. प्र० हि०—प्र० ३७/३२-३३; क० हिन्दु०—प्र० १९/६२, ६३
३१. क० हि०—प्र० २०/३, ११, १८, २१-२३, ३२
३२. प्र० —प्र० ३७/३५-३८
३३. श्रीरास—प्र० ३२/१०, २८, ३३, ३४, ३८
३४. " —प्र० ३३/५, २८-२९; प्रकाश हिन्दु०—प्र० ३७/४०-४२
३५. प्र० हिन्दु०—प्र० ३७/४६-४८, ५१-५८
३६. षटरितु—बारह मासीनो कलश—८.१०
३७. प्र० हिन्दु०—प्र० २९/४६, ५३, ५५, ५७
३८. ,, —प्र० ३७/५४-६८

३९. गीता—२/४७-१५/१६.१७-१८/६६
४०. खु०—प्र० १२/३०-३२
४१. " —प्र० १३/२७-३०
४२. किरंतन—प्र० १२६/१००-११४;
प्रेम दर्शन—पृ० १२; किरंतन प्र० १४/२
४३. प्र० हिन्दु०—प्र० ६/४७
४४. सनंध—प्र० ३/७
४५. प्र० हि०—प्र० १०/६-११;
कि० हि०—प्र० २०/२७, २८ प्र० २३/९०
४६. क० हि०—प्र० २३/८७
४७. वृ० मु०—प्र० ३५/६
४८. " —प्र० ३५/३१, ४०, ४१, ६०
४९. " —प्र० ३७/१५-२९
५०. " —प्र० ३७/१०, १३; ६०-६४
५१. " —प्र० ३७/६७, ६९, ७२, ७६, ७९,८१
५२. " —प्र० ३८/६, १३, १४, ३४, ३७, ३९-४४
५३. „ —प्र० ३८/४७-५०, ५५
५४. „ —प्र० ३८/२-५, ७, ११, १६-१९
५५. „ —प्र० ३९/२०-२८
५६. „ —प्र० ३९/२९, ३८
५७. „ —प्र० ३९/४६-५८
५८. ला० बी०—प्र० १३/३७-३८;
वृ० मु०—प्र० ३/५०-६१
५९. वृ० मु०—प्र० ३९/६०-६८
६०. " —प्र० ३९/६९
६१. वृ० मु०—प्र० ४०/६, १२, २१, २७, ९, ३३-३४, ४४-४५, ५९-६०
६२. " —प्र० ४०/६४, ६६, ७२;
प्र० ४१/७
६३. „— प्र० ४१/३१-३२, ३५, ३९, ४४,४७
६४. " —प्र० ४१/१८; प्र० ४२/१६, १७, २०
६५. " —प्र० ४२/२२-२७
६६. ला० बी०—प्र० १५/५६,५७
६७. प्र० हि०—प्र० ३७/८७, ८८; प्र० ४२/२९-३०,
६८. वृ० मु०—प्र० ४२/२८-२९
६९. ला० बी०—प्र० १६/२-५
७०. ला० बी०—प्र० १६/१६-३३
७१. „ —प्र० १६/३८, ४२, ४७, ५३
७२ वृ० मु०—प्र० ४३/६०-६२
७३. „ —प्र० ४४/२, ७; ला० बी०
प्र० १८/४, ८, ९, १२, १६, २१-२५
७४. ला० बी०—प्र० १९/१६
७५. „ —प्र० २०/४-१४
७६. „ —प्र० २०/२२-२६
७७. „ —प्र० २१/११, २४; प्र० २२/३, १५-१७
७८. „ —प्र० २२/१९, २२, २५-२६;
प्र० २३/१३-१४
७९. „ —प्र० २३/३०; प्र० २४/१, ८, ४२-४९
८०. „ —प्र० २५/७, २२-२४; ३४, ३८-३९
८१. „ —प्र० २६/१, ७, २७, ३०, ३४
८२. वृ० मु०—प्र० ४४/४८-५१
८३. „ —प्र० ४७/८५-८८; नि० चरि०, पृ० ३५५
८४. „ —प्र० ४८/१५-२०
८५. „ —प्र० ४८/१२-१४, प्र० ४९/४-१०, २१; २४, २८, ३०-३६, ७४-७८
८६. „ —प्र० ५०/७-२९
८७. „ (प्रगटवाणी) प्र० ३७/८९-१०६;
मा० सा०-प्र० ६/४५; प्र० १४/६६-६७;
प्र० ४/२५
८८. वृ० मु०—प्र० ५०/३३, ३४, ३८-३९,
८९. वृ० मु०—प्र० ५१/२१-२२
९०. „ —प्र० ५०/४२, ४५, ५२, ५६-६०; प्र० ५१/९, १४
९१. ती० कि० ना०—पारा २ प्र० २०/३-६, प्र० ३१/२७-३२; प्र० ३२/९; प्र० ४८/३, ५; जामुल मारफत—किरंतन पुराने
९२. किरंतन—प्र० ६१ (साहब तेरी साहबी भारी); प्र० ५६ (भई नई रे नवो खंड)
९३. मा० सा०—प्र० ३/११०-१११; प्र० ९/५७-५८
९४. „ —प्र० ५/२६-३२; ३५, ४२; प्र० ८/८६

९५. खु०—प्र० १३/१-१८
९६. „ —प्र० १२/४३, ५०, ५४
९७. ती० कि० ना०—प्र० ४८/२-५
९८. मा० सा०—प्र० १३/१५, २१, ३७, ७४, ९९; प्र० ४/२२-४२; कि०ना०छोटा प्र० २/९२; प्र० १/८९, ९२, ९५, १७, १९;
९९. मा० सा०—प्र० ८/३-८; २२-२७; ४६-४९; ५४, ६०, ८१
१००. मा० सा०—प्र० १२/१७-२४, ३०-३१
१०१. प्र० हि०—प्र० ३७/९५-९८
१०२. कि० ना० (बड़ा) प्र० ५/२०; वृ० मु० प्र० ५०/५७-५८
१०३. ला० बी०—प्र० ३६/१०-१५
१०४. ला० बी०—प्र० ३७/५२-५३
१०५. नि० च०, पृ० ४-७
१०६. वृ० मु० प्र० ५२/४-७, ४१; ९२, ९६, ८८, ९२- ९३, ९७; प्र० ५३/२३-२४; ला० बी० प्र० ३३/३६
१०७. ला० बी०—प्र०३५/५९-६४
१०८. ला० बी०—प्र० ३५/७६-६४
१०९. ला० बी०—प्र० ३५/८७-८८
११०. „ ३६/१२-१४
१११. „ ३७/५१-५८
११२. „ ४०/५-१८
११३. „ ४०/१९-३२
११४. „ ४१/२४-४९
११५. „ ४१/६८-६९; ६४-६५
११६. „ ४२/१-५, २८
११७. वृ० मु०—प्र० ५८/८३-८८

बादशाह मुइनुद्दीन की रूबाई का अनुवाद—
'हजार साल में मुकर्रर कुरान पाक को देखता हूं।
अफसोस के साथ मेहदी और दज्जाल का
निशान देखता हूँ।
दीन बार-बार अन्दर-बाहर फिरता है,
यह हक का भेद जाहिरी आंखों से देखता हूँ।।—
(अनुवाद) जामुल मारफत

११८. ऐ० प्र०छ०भूमिका, पृष्ठ-१०६, १०७, ३०२, ३०३; किरंतन—राजा रे मलो राय राणो तणों (प्र० ५८)

११९. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।
श्रीमद्भगवतगीता।। ४/७-८

—हे भारत (अर्जुन)! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं ही अपने रूप को—साधु पुरुषों के परित्राण के लिए तथा दूषित कर्म करनेवालों के नाश के लिए युग-युग में प्रकट करता हूँ। ×

इसी प्रकार, हे अर्जुन! जो-जो भी विभूति-युक्त अर्थात् ऐश्वर्य, कांति और शक्तियुक्त वस्तु है—उस-उस को तू मेरे ही तेजांश से उत्पन्न हुआ जान—

यद्यद्विभूति मत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्त देवाव गच्छत्वं मम तेजांऽशसंभवम्।।
श्रीमद्भगवत् गीता।। १०/४१

—कुरान की भी घोषणा है—'मैं नूरे खुदा हूं और कुल खिलवत मेरे नूर से है—
'इन्नामिन्नूरिल्लाहे व कुल्लो शैइ मिन्नूरी!'
तथा,—अव्वल आखर महंमद, महंमदसब अवसर।।
म० प्रा०, मा० सा०, प्र०५/२२

१२०. खु०—प्र० १३/२७-३१; २१-३३; कि० ना० बड़ा—प्र० १/२१-३३
१२१. ला० बी०—प्र० ४७/६-१०
१२२. „ —४७/२३-३३; ५६-५९
१२३. वृ० मु०—६१/२-१९; १७-१८; २३-२८;
१२४. „ —६१/४२-८४
१२५. „ —६२/१८-२४, ३२
१२६. „ ६१/२९-३१, ७२-८४
१२७. ला० बी०—प्र० ५५/५३-५४
१२८. वृ० मु०—प्र० ६३/३०, ३३, ६३, ६५, ७०, ७२ ६४/३, ६, ८, १०-१४, १८
१२९. „ —६४/५६-५९
१३०. „ —६४/७३-८०
१३१. „ —६५/२७-३३, ३६-३९; ४३, ५९-६०
१३२. „ —६६/२९-३८
१३३. ला० बी०—५९/२९, ३२-३६; ३९-४४
१३४. प्र० हि०, प्रगट वाणी—प्र०३७ /९८-११२
१३५. खि०, प्र०१४/८५; परि० प्र० २९/७५-७७, सिंधी—१६/१७-२०
सि०—२४/५८, प्र० २५/१८-२०

